वैश्य-कुल-गौरव

महाराजा हेमचन्द्र

महाराजा हेमचन्द्र

लेखक

पी० पी० सिंगला

अध्यक्ष : इतिहास विभाग

श्री सनातन धर्म कॉलिज, पानीपत

अग्रवाल साहित्य सदन

193/2, पानीपत-132103

सर्वाधिकार लेखक के पास सुरक्षित

प्रकाशक : अग्रवाल साहित्य सदन, १६३/२, पानीपत

प्रथम संस्करण : विजय दशमी, १६ अक्तूबर १६८३

मूल्य : 10 रुपये

लेखक : पी० पी० सिंगला

मुद्रक : पी० ए० प्रिंटर्ज, ठठेरा बाजार, पानीपत

दो शब्द

१६वीं शती में भारतीय राजनीतिक मंच पर एक ऐसे शूरवीर महापुरुष का जन्म हुआ जिसने राष्ट्रीय एकता तथा विदेशियों को भारत से बाहर निकालने के लिये लगातार घोर संघर्ष किया, परन्तु इतिहास-ग्रंथों में उसका चरित्र एवं व्यक्तित्व छोटा, धूमिल तथा बिगाड़ कर प्रस्तुत किया गया। मध्यकालीन भारत का इतिहास-लेखन जानबूझकर किया हुआ एक धोखा हैं। इस युग के फ़ारसी इतिहास-लेखक प्रायः साम्प्रदायक थे, और तत्कालीन बादशाहों के चाटुकार एवं भाँड बनकर उनकी स्तुति और उनके विरोधियों तथा शत्रुओं की निन्दा करके इतिहास लिखा करते थे। उन्होंने युग के सर्वोच्च महापुरुष हेमचन्द्र को 'हेमू बक्काल' बनाकर उसकी आसमानी कीर्ति को धूल में मिलाने की चेष्टा की।

इसलिये इतिहास में 'दिल्लीपति महाराजा हेमचन्द्र विक्रमादित्य' को यथोचित स्थान निर्धारित करने की राष्ट्रीय आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ती में अपना योगदान देने के उद्देश्य से मैंने यह पुस्तक लिखी।

साधारण लोगों से मिलकर यह पता लगता है वे बाबर, शेरशाह, महाराणा प्रताप, अकबर, शिवाजी आदि महान ऐतिहासिक पात्रों से तो अवगत हैं, किन्तु हेमचन्द्र से नहीं। 'हेमू' के नाम से भी वे अपरिचित हैं, किन्तु जब उन्हे 'हेमू बक्काल' बताया जाता है तो कुछ लोग समझ जाते है कि हाँ, एक बनिया था जिसने अकबर बादशाह के साथ लड़ाई लड़ी।

जन-साधारण को हेमचन्द्र की पूरी जानकारी देने के लिये सरल भाषा का प्रयोग किया गया। इतिहास-के विद्वान मुझे क्षमा करेंगे कि तथ्यों का वर्णन करते हुये 'संदर्भ' नहीं दिये गये। परन्तु अत्योक्तियों एवं कल्पनाओं से मुक्त यथा-तथ्यों के आधार पर यह कार्य किया गया है।

समूचे कार्य में हरियाणा के वरिष्ठ इतिहासकार डा० के० सी० यादव, श्री वृन्दावन लाल चौधरी : संचालक महाराजा अग्रेसन शोध-संस्थान जींद और पानीपत के ख्याति-प्राप्त साहित्यकार डा० राजेन्द्र कुमार मल्होत्रा ने मुझे पूरा सहयोग दिया, उनके प्रति मैं आभार प्रकट करता हूं। महाराजा हेमचन्द्र की 'समाधि' के कैमरा-चित्र लेने में सहयोग के लिये पानीपत के ज़मींदार चौधरी देसराज का भी मैं धन्यवाद करता हूँ।

पाठक वृन्द से निवेदन है कि पुस्तक की किसी पंक्ति में धुंधलापन, अस्पष्टता, भाषा एवं व्याकरण की ग़लती दिखाई दे तो उसके लिये वे क्षमा करें।

लेखक

पृष्ठ-तालिका

१	ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि	१
२	हेमचन्द्र के इतिहासकार	१२
३	हेमचन्द्र का प्रारम्भिक जीवन	१७
४	उत्कर्ष की सीढ़ियों पर	२२
५	जुनैदखाँ पर तेज़ प्रहार	२६
६	ताजखाँ किरानी का दमन	३१
७	सूर सल्तनत का विघटन	३७
८	हेमचन्द्र की गौरवपूर्ण विजयें	४२
९	हुमाँयू का पुनः भारत आगमन	४९
१०	मुग़लों पर ऐतिहासिक विजय	५४
११	दिल्लीपति महाराजा हेमचन्द्र विक्रमादित्य	६३
१२	मुग़ल-शिविर में हेमचन्द्र का आतंक	७३
१३	पानीपत में हेमचन्द्र की हार	७७
१४	हेमचन्द्र की हत्या	८५
१५	सन्त पूरनमल की शहीदी	९०

भारत के इतिहास में हेमचन्द्र का यथार्थ स्थान और उसके कार्यों को ठीक तरह समझने के लिये उस युग की राष्ट्रीय परिस्थितियों तथा हेमचन्द्र से पहले के संक्षिप्त इतिहास की जानकारी आवश्यक है। मध्ययुगीन मंच पर हेमचन्द्र का उदय १५५२ ई० में हुआ। इसलिये उससे पहले का इतिहास १५२६ ई० से आरम्भ किया जाता है। यह तिथि दो युगों की विभाजन-रेखा है।

१५२६ ई० में पानीपत की पहली लड़ाई हुई जिसमें विदेशी आक्रमणकारी बाबर विजयी हुआ। उसने भारी तोपों की सहायता से दिल्ली के अफ़गान सुल्तान इब्राहीम लोधी को हरा दिया। लोधी सुल्लान अपने मित्र ग्वालियर नरेश विक्रमादित्य के साथ रणक्षेत्र में मारा गया। लगभग ५०,००० अफ़गान और राजपूत काम आये।

विजयी बाबर द्रुतगति से दिल्ली पहुंचा, ताकि लोधी के ख़जानों पर अधिकार किया जा सके। इसी उद्देश्य से उसने अपने बड़े पुत्र हुमाँयू को आगरा रवाना किया। आगरा में हुमाँयू को बताया गया कि ग्वालियर के राजा विक्रमादित्य के खज़ाने में 'कोहनूर' हीरा है जिसका मूल्य संसार के सब हीरों से अधिक है। विक्रमादित्य का परिवार इस समय आगरा में था! हुमाँयू ने इसे गिरफ्तार करके हीरा छीन लिया।

दिल्ली तथा आगरा पर अधिकार कर लेने के बाद बाबर ने आस-पास के दुर्ग जीते, जिनमें ग्वालियर, धौलपुर, सम्भल

कालपी और बयाना के दुर्ग प्रसिद्ध हैं। परन्तु वह हसन खां के प्रदेश मेवात में सफल न हो सका। हसनखां मेवाती एक ऐसा देशभक्त अफ़गान था जिसे विदेशियों के हाथों इब्राहीम लोधी की हार से भारी दुःख हुआ। इसलिये उसने इब्राहीम के भाई महमूद लोधी को दिल्ली के राजसिंहासन का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। अपने उद्देश्य की पूर्ती के लिये उसने राजपूतों का सहयोग लेना चाहा। इसी कारण से कनवाह के युद्ध में हसनखां मेवाती तथा महमूद लोधी अफ़गान सेनाओं को लेकर राणा सांगा के झंडे तले मुग़लों से लड़े !

भारत में बाबर को सामाजिक एवं आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। भारतीयों ने उस विदेशी आक्रमणकारी का स्वागत नही किया, बल्कि उसके प्रति घृणा दिखाई। यह बात बाबर ने भी अपनी आत्मकथा 'तुज्के-बाबरी' में लिखी है-'इस देश के किसान और सैनिक मेरे आदमियों से बचते थे और भाग जाते थे। हम लोगों से गांव वालों को शत्रुता और घृणा थी। इसलिये हमें न खाने के लिये अन्न मिला और न घोड़ों के लिये घास प्राप्त हो सकी।'

भारत पर मुग़ल सत्ता की स्थापना में बाबर का सबसे प्रबल शत्रु मेवाड़पति राणा सांगा था। वह अपने युग का परम वीर और अठ्ठारह युद्धों का विजेता था। उसने राजपूताना के सभी राजपूत घरानों को संगठित कर लिया था। अफ़गान भी उसके नेतृत्व में आ रहे थे। बाबर ने राजपूतों से अफ़गानों को

अलग रखने का प्रयास किया। उसने 'ज़िहाद' का नारा लगाकर आने वाले युद्ध को हिन्दू-मुसलमानों के मध्य धर्मयुद्ध की रंगत देने की चेष्टा की। परन्तु अफ़गानों पर इसका विशेष असर न हुआ। वे अब भारत में बस गये थे और अपने को भारतीय समझते थे। इसलिये उन्होंने बाबर के ज़िहाद के पाखंड को ठुकरा दिया और विदेशी मुग़लों को शत्रु मानकर राजपूतों को सहयोग दिया।

१७ मार्च १५२७ को सीकरी के समीप कनवाह के मैदान में युद्ध हुआ। गोला-बारूद की सहायता से इस बार भी विजय बाबर को मिली। यदि राणा ने बाबर को तैयारी का अवसर न दिया होता और युद्ध तुरन्त छिड़ जाता तो परिणाम दूसरा ही होता।

कनवाह के परिणाम से भारत में बाबर का सिहासन सुरक्षित हो गया। अफ़गानों की शक्ति को भी धक्का लगा। वे राजपूतों के सहयोग से मुग़लों के भीषण प्रतिद्वन्दी बन सकते थे। अब वे अकेले रह गये। तब भी बाबर की यह शका बनी रही कि राजपूताना के हारे हुये राजपूत कहीं बिहार के अफ़गानों से न मिल जायें और मुगलों के विरुद्ध एक शक्तिशाली संघ की स्थापना करलें। इसलिये राजपूतों को पूर्वी प्रदेशों से दूर रखने के उद्देश्य से उसने पहले मालवा पर अधिकार करना उचित समझा। मालवा का मुख्य दुर्ग चन्देरी था। बुन्देलखण्ड की सीमाओं पर स्थित यह दुर्ग उस समय मेदिनी राय के अधिकार में था। बाबर ने चन्देरी पर आक्रमण किया और लगभग एक

घण्टे में इसे जीत लिया गया। दृढ़निश्चयी मेदिनी राय के वीर राजपूत इतनी शीघ्र कैसे हार गये, यह समझने में कठिनाई है।

चन्देरी के पतन के बाद बाबर ने बिहार के अफ़गानों के विरुद्ध कूच किया। अफ़गान लोग पानीपत के बाद इधर उधर बिखर गये थे, किन्तु उनके दो देशभक्त सरदार बब्बन लोधी और वैजीद फारमूली ने उन्हें संगठित करने का सफल प्रयास किया था। ये दोनों बड़े वीर पुरुष थे। इन्होंने अफ़गानों में राष्ट्रीयता की भावना जागृत करके उन्हें मुगलों के विरुद्ध संगठित कर दिया, किन्तु वे इतने शक्तिशाली नहीं हो सके कि सफलता से मुग़ल सेना का मुकाबला कर सकते। अतः वे घाघरा की लड़ाई में हार गये। बाबर की यह तीसरी सफलता थी जिसके परिणामस्वरुप वह सिन्धु और गंगा की घाटियों का शासक बन गया, किन्तु बब्बन और वैजीद के छापा मार युद्ध से पूर्वी अफगानों पर इसकी विजय स्थाई न रही।

१५३० में बाबर की मृत्यु के बाद हुमायूं सिंहासन पर बैठा। वह सुस्त, शौकीन और शत्रुओं के प्रति उदार बादशाह था। इतिहास में उसे 'अफ़ीमची मुग़ल बादशाह' कहा जाता है। उसे एक ओर शेरशाह सूरी और दूसरी तरफ बहादुर शाह गुजराती से लगतार दस वर्ष तक संघर्ष करना पड़ा जिसके परिणामस्वरुप शेरशाह ने १५४० में मुग़लों को भारत से निकाल कर सूर सल्तनत स्थापित की।

शेरखां का जन्म १५८६ ई० में नारनौल हरियाणा में हुआ। उसका दादा घोड़ों का व्यपारी था, परन्तु उनके पिता हसनखां सूर ने लोधी सेना में नौकरी करली और उसे सहसराम की जागीर मिल गई। हसन की ज्येष्ठ पत्नी से दो पुत्र –शेरखाँ और निज़ामखां हुये। छ त्रावस्था में शेरखाँ का आचरण अच्छा नहीं था, वह चोरियां डकैतियां करता रहा। अबुल फ़ज़ल ने उसे 'तेक पिता का दुष्ट पुत्र' कहा है। अपने पिता की जागीर का स्वामित्व प्राप्त करने के बाद उसके क़दम तेज़ी से आगे बढ़ने लगे। भाग्य ने भी इसका साथ दिया बिहार के अफ़ग़ान सरदार ताजखां सारंगवानी की मृत्यु हो गई। उसकी विधवा लाड मलिका ने शेरखां से शादी करली और अपार धन-सम्पत्ति के साथ चुनार का क़िला भेंट किया।

हुमायूं ने शेरखां से चुनार का दुर्ग मांगा जिसे शेरखां ने देने से इन्कार कर दिया। तब हुमायूँ ने स्वयं चुनार पर चढ़ाई कर दी। दुर्ग रक्षकों और मुगलों में महीनों लड़ाई होती रही। इस समय गुजरात का बहादुर शाह अपनी राज्य सीमाओं के विस्तार में लग गया और हुमायूं के पास चिन्ताजनक सुचनायें आने लगी अतः उसे चुनार का घेरा उठाना अनिवार्य हो गया। शेरखाँ भी मुग़लों से शत्रुता लेना नहीं चाहता था। अतः हुमायूं ने शेरखां की शर्तों पर घेर उठा लिया और कई हजार सैनिक गंवाकर आगरा लौट आया। डा० कालिकारंजन कानूनगो लिखते हैं -'चुनार में हुमायूं का बुरा हाल हुआ। पानीपत के बाद यह

पहला अवसर था कि मुग़लों को अफ़गानों से एक किले पर हार खानी पड़ी। मुग़ल चित हो गये और उनके मन पर बहुत बरा प्रभाव पड़ा। गुजरात का शासक बहादुरशाह इतना महत्व काँक्षी था कि दिल्ली विजय के स्वप्न देखा करता था।

१५३५ में हुमायूं ने बहादुर शाह के विरुद्ध प्रस्थान किया इस समय बहादुर शाह चित्तौड़ का घेरा डाले पड़ा था। चित्तौड़ की रानी कर्णवती ने हुमाँयू से सहायता माँगी और राखी भेजी कि वह भाई का कर्त्तव्य निभाकर उसकी रक्षा करे। परन्तु मूर्ख हुमाँयू ने एक गैर-मुस्लिम पर हमला करने वाले अपने सहधर्मी भाई बहादुर शाह पर इस समय आक्रमण करना पाप समझा। परिणाम-स्वरूप चितौड़ का पतन हो गया। रानी ने जौहर किया यदि हुमांयू इस समय रानी की सहायता करता तो निःसन्देह भारतीय इतिहास में एक ऐसे आदर्श की स्थापना होती जिससे भावी पीडियों को धार्मिक एकता की प्रेरण मिलती। परन्तु यह कार्य हेमचन्द्र और अकबर ने किया।

हुमायूं की सेना मन्सौर की ओर बढ़ी। बहादुरशाह मन्दसौर के शिविर से निलकर माण्डू के दुर्ग मे जा बैठा। हुमायू पीछे लगा था। इसलिये बहादुर शाह माण्डू से भागकर चम्पानेर और अन्त में उसने डेयू के टापू में आश्रय लिया। हुमाँयू मालवा और गुजरात पर अधिकार करके आगरा लौट आया। उसके वापस लौटते ही बहादूर शाह ने अपने खोये हुये प्रदेश पुनः प्राप्त कर लिये।

इधर बिहार में शेरखाँ की शक्ति दिन प्रतिदिन बढ़ रही थी। सूरजपुर की लड़ाई में उसने बंगाल के शासक महमूद शाह को हरा दिया। इतिहास में यह युद्ध बहुत ही निणयाक माना जाता है। इसके परिणाम से वह समूचे बिहार का स्वामी बन गया।

बंगाल के शासक महमूद शाह ने शेरखां की बढ़ती हुई शक्ति से घबरा कर हमायूं को सहायता के लिये बुला लिया। इसलिये शेरखां ने बंगाल पर पूर्ण अधिकार करने का निश्चय किया। एक विशाल सेना के साथ शेरखां ने अपने सेनापति ख्वासखां को बंगाल की राजधानी गौड का घेरा डालने के लिये रवाना किया। उसे यह आदेश दिया गया कि हुमायूं के पहुंचने से पहले ही बंगाल जीत लिया जाये।

महमूद शाह की सहायता के लिये हुमायूं जोलाई १५३७ में आगरा से रवाना हूआ। मार्ग में उसने चुनार का घेरा डाल दिया। दुर्ग विजय करने में उसने पूरे छः महीने नष्ट कर दिये। इस दौरान शेरशाह ने गौड़ पर अधिकार कर लिया।

चुनार जीतकर मुग़ल सेना ने बंगाल पर चढ़ाई की। शेरशाह अभी इतना प्रबल नहीं था कि मुग़लों से सीधी टक्कर ले सके। इसलिये उसने बगाल से सेनायें हटा ली और गौड पर हुमायूं का अधिकार होने दिया। गौड़ के भव्य महलों को देखकर हुमाँयू का मन रीझ गया और आठ महीने विलास में डूबा रहा। इसी दौरान शेरशाह ने तलियागढ़ी से कन्नौज तक के सारे प्रदेश

पर अपना अधिकार जमा लिया। हुमाँयू की आँख उस समय खुली जब उसे आगरा से यह समाचार मिला कि उसका भाई मुग़ल सिंहासन पर स्वतन्त्र शासक बन बैठा है। हुमायूं को तुरन्त लौटना पड़ा।

आगरा की ओर बढ़ते हुये हुमायूं का रास्ता अफ़गानों ने रोक लिया। हुमाँयू की बिशाल वाहिनी लड़खडाती हुई कभी गंगा के इस किनारे कभी उस किनारे बढ़ती चली। अफ़गान छापामारों ने हर तरह से उसे तग किया। आखिर हुमायूं गंगा-करमांसा के संगम के समीप चौसा में रुका। शेरखां ने मुग़लों पर तुरन्त आक्रमण नहीं किया।

२५ जून १५३९ की रात्रि के अन्तिम पहर में मुग़ल निश्चिन्त सोये हुये थे कि यकायक अफ़गान उन पर टूट पड़े। मुग़ल सैनिक इधर उधर भागने लगे। हुमायूं अपने खेमे तक भी न पहुंच सका। किन्तु उसके आदमी उसे घोड़े पर बिठाकर बाहर ले आये। गंगा पार करने के लिये उसने अपना घोड़ा नदी में उतार दिया, किन्तु वह डूबने लगा। इसी समय निज़ाम सक्का नदी में कूद पड़ा और मश्क द्वारा हुमायूं को नदी पार करा दी।

इस युद्ध के बाद शेरशाह ने बंगाल, बिहार और जौनपुर के सारे प्रदेशों पर स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना कर ली। अब वह मुग़ल सम्राट हुमाँयू की बराबरी का दावा कर सकता था। उसने 'शेरशाह' की उपाधि धारण की और दिल्ली का सम्राट बनने की तैयारी करने लगा।

आगरा पहुंचकर हुमायूं ने नये सैनिक भर्ती किये। विशाल सेना तथा भारी तोपखाना लेकर उसने कन्नौज की ओर कूच किया और गंगा के पश्चिमी किनारे पर शिविर डाल दिया। शेरशाह मुग़ल प्रदेशों को जीतता हुआ, पहले ही गंगा के पूर्वी तट पर आ चुका था। एक महीने तक दोनों सेनायें एक दूसरे को ताकता रही। आखिर हुमाँयू ने अपनी सेना गंगा के पार उतारी और बिलग्राम के पास शिविर लगाया। एक दिन घोर वर्षा के कारण मुग़लों में हलचल मची हुई थी, तब शेरशाह ने शत्रु पर आक्रमण कर दिया। कुछ घंटों के युद्ध के बाद वे भागते दिखाई दिये। इस बार भी हुमायूं ने बड़ी कठिनाई से गंगा पार की। वह आगरा भाग गया।

डा० कानूनगो लिखते हैं -- 'पानीपत से अब तक भारतीय लोग मुग़लों से कई बार हार चुके थे। बिलग्राम के युद्ध से उनका कलंक धुल गया।

शेरशाह ने अपने सेनापति ब्रह्मजीत गौड़ को हुमायूं का पीछा करने के लिये रवाना किया। हुमायूं दिल्ली के रास्ते से नही गया। वह आगरा से सीकरी, रोहतक, सरहिन्द से भागता हुआ लाहौर में रुका। ब्रह्मजीत गौड सरहिन्द में था कि हुमायूं ने शेरशाह से सन्धि की याचना की। उसने प्रस्तावित किया कि सल्तुज पार के प्रदेश उसके पास छोड़ दिये जायें। शेरशाह ने ने उसका यह सुझाव ठुकरा दिया।

लाहौर में लगभग दो लाख मुगल इकट्ठे हो चुके थे। सन्धि

की विफलता की ख़बर सुनकर वे भयाकुल हो उठे। इसी समय पता लगा कि शेरशाह समीप आ पहुंचा है। मुग़लों ने सामान बांधा और जिसका दिल जिधर चाहा भाग खड़ा हुआ। हुमांयू ने ईरान में शरण ली। वह पन्द्रह वर्ष भटकता फिरता रहा। परन्तु भारतीयों की आपसी फूट के कारण वह पुन: १५५५ ई० में दिल्ली के सिंहासन पर आ बैठा।

इस प्रकार शेरशाह ने मुग़लों को भारत से बाहर निकाल कर सूर सल्तनत की स्थापना की। उसने केवल पांच वर्ष शासन किया। १५४५ई० में उसकी मृत्यु हो गई। डा०वी० ए० स्मिथ के अनुसार--'शेरशाह अधिक समय जीवित रहता तो मुग़ल भारत के इतिहास में पुन: दीख ही नहीं पड़ते।'

शेरशाह के बाद उसका पुत्र स्लीमशाह गद्दी पर बैठा : उसने 'लोहे और रक्त की नीति' से राज्य किया। मुल्ला बदायूंनी लिखते हैं--'वह दम्भी अफ़गानों से अपने पाँव के जूतों को सलाम करवाता था। ये जूते साम्राज्य के दूर से दूर की बस्तियों में कुर्सियों पर रखे रहते थे।' स्लीमशाह की क्रूर नीतियों के कारण उसके विरुद्ध षड़यन्त्र और विद्रोह पनपने लगे, किन्तु उसने राज्य के कई बड़े अमीरों का अन्त कर दिया। इस सख्ती के परिणाम से वह स्वयं तो सुरक्षित रहा, किन्तु सल्तनत की जड़े हिल गई।

परन्तु जन-साधारण उसके शासन से सुखी थे और वे उसकी नीतियों का समर्थन करते थे। शेरशाह की प्रशासनिक व्यवस्था को यथावत रखकर उसने कई नये काम किये।

सलीमशाह के कठोर व्यवहार को छोड़कर यदि उसके चरित्र एवं कार्यों का अध्ययन किया जाये तो उसका शासन शेर शाह का ही शासन था। यद्यपि शेरशाह की महानता के कारण वह कुछ फीका दिखाई देता है, किन्तु वह शेरशाह से कम नहीं था। शेरशाह ने शौर्य और बुद्धि-चातुर्य से राज्य प्राप्त किया, स्लीमशाह ने चारित्रिक शक्ति से राज्य किया। शेरशाह और स्लीमशाह दोनो जन-कल्याणकारी थे। दोनो पक्के धार्मिक थे, किन्तु कट्टरपंथी धर्मान्ध कोई भी नहीं था।

शेरशाह को टोडरमल मिल गया, स्लीमशाह को हेमचन्द्र प्राप्त हो गया। हेमचन्द्र ने टोडरमल से कहीं अधिक ख्याति पाई।

स्लीमशाह ने हेमचन्द्र को सरकारी ठेकेदार बनाया फिर शहनगा-ए-मण्डी, तदनन्तर दारोगा-ए चौकी और इसके बाद गुप्त चर विभाग के अध्यक्ष पद पर नियुक्त किया। हेमचन्द्र ने सल्तनत के लिये जो काम किये उनके अध्ययन से पता लगेगा कि हेमचन्द्र को एक पद के बाद दूसरे ऊंचे पद पर नियुक्त करने में स्लीमशाह का विवेक न्याय संगत से भी अधिक उत्तम सिद्ध हुआ।

--०--

हेमचन्द्र के इतिहासकार

हेमचन्द्र मध्यकालीन भारतीय इतिहास का एक अत्यन्त रोमांचकारी पात्र है। परन्तु समकालीन इतिहासकारों ने उसके विषय में पर्याप्त जानकारी नहीं दी। हेमचन्द्र के मुख्य इतिहास लेखकों में अकबर का दरबारी अबुल फ़ज़ल है जिसका ग्रंथ 'अकबर नामा' उसकी पर्याप्त एवं विस्तारपूर्वक जानकारी प्रदान करता है। परन्तु अबुल फ़ज़ल ने पक्षपात की भावना से तथ्यों को भ्रामक बनाकर लिखा। वह अपने आश्रयदाता अकबर के शत्रु हेमचन्द्र को कतई पसन्द नहीं करता था। उसने जानबूझ कर स्थान २ पर उसे विकृत और विक्लांन्त बनाने की चेष्टा की। उदाहरणार्थ अबुल फ़ज़ल ने लिखा–'प्रत्यक्ष में न हेमू की कोई जाति थी और न कोई प्रतिष्ठा और न कोई सूरत थी न सीरत। उस समय के दुष्ट लोगों को दण्ड देने के लिये ईश्वर ने उनसे भी खराब आदमी भेजा था। मारांश यह है कि कुरुप और क्षुद्र शरीर वाले आदमी ने चतुरता और चालाकी से तथा लोगों की बुराइयाँ करके अपना काम बनाया और स्लीम खाँ तक उसने गति प्राप्त कर ली। प्रत्यक्ष में तो वह अपने स्वामी के प्रति वफ़ादारी का का व्यवहार करता था, परन्तु वास्तव में अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लगा रहता था और उत्पीड़ित लोगों के माल से अपने घर को सजाया करता था।' ऐसी बेहूदा बातों से अबुल फ़ज़ल को लगभग सभी यूरोपीय इतिहासकारों ने 'चापलूसों का सरदार' कहा है। दर असल उसने 'अकबर नामा' ग्रंथ अनपढ़ बादशाह को सुनाने के लिये लिखा था। तब वह उस बादशाह के बैरी हेमचन्द्र को

कलंकित करने से कैसे चूक सकता था। उसने अपने आश्रयदाता की ऐसी हर बात छिपाई है जिससे उसकी कीर्ति को धब्बा लगे। और अकबर के विरोधियो के विषय में बेईमान तरीके से 'तथ्य' बनाने का प्रयास किया है।

मुल्ला बदाँयूनी के ग्रंथ 'मुन्तख़ाब-उल-त्वारीख़' के पन्नों पर पर भी हेमचन्द्र का पर्याप्त विवरण मिलता है। परन्तु मुल्ला जी की लेखनी उस युग की तलवार से कई गुना तेज़ और साम्प्रदायिक थी। वह इतने अधिक कट्टर पंथी थे कि हल्दी घाटी की लड़ाई में 'गाज़ी' बनने गये। उन्होंने राजा बीरबलको लानती, कुत्ता, बेदीन' काफ़िर आदि लिखा। तब भला वह हेमचन्द्र को कैसे छोड़ सकते थे। उन्हें इस बात से बहुत दुःख हुआ कि अफ़गान सैनिक हेमचन्द्र के सचालन में मुग़लो के विरुद्ध लड़े। इस लिये उन्होंने हेमचन्द्र के वर्णन में ऐसी भद्दी तथा व्यंग्यात्मक भाषा का प्रयोग किया कि पाठक को बदाँयूनी और उनके ग्रंथ के प्रति ग्लानी होती है।

'तारीख़-ए-सलातीन-ए-अफ़गान' के लेखक अहमद यादगार ने भी हेमचन्द्र के नये तथ्य दिये और खुलकर लिखा। ग्रंथ का आरम्भ बहलोल लोधी से होता है और अन्तिम प्रकरण में हेमचन्द्र की हार एवं हत्या का वृत्तान्त है। परन्तु वह भी मुल्ला बदाँयूनी की तरह साम्प्रदायिक थे और उन्होंने यत्र-तत्र आश्चर्य-जनक तथा हास्यास्पद टोटके खूब लिखे। हेमचन्द्र के प्रति उनकी लेखनी प्रतिरोधी रही और कई अविश्वसनीय बातें लिखी। जैसा कि दिल्ली-विजय से पूर्व की घटनाओं के विवरण में वह लिखते हैं– 'लड़ाई से पहली शाम को हेमू ने शेख़ कुतुब-ल-हक़ के मज़ार की यात्रा की और पवित्र दिल्ली पर अपना सिर रखकर प्रतिज्ञा की

कि यदि दिल्ली की गद्दी उसे मिल जायेगी तो वह मुसलमान बन जायेगा और मुहम्मद के धर्म का प्रचार करेगा। भगवान ने उसे विजय प्रदान की किन्तु उसने अपने को पतित किया और न मुसलमान बना और न काफ़िराना विचारों को ही छोड़ा। इतना ही नहीं, उसने मुसलमानों की हत्यायें भी की।' अहमद यादगार का यह अवतरण एक ऐसा उदाहरण है जिससे पता लगता कि इतिहासकार का द्वेष अपने नापसन्द पात्रों का कितना अहित कर सकता है।

इन विद्वानों के अलावा अब्दुल्ला, निज़ामुद्दीन, फ़रिश्ता, आरिफ़ कन्धारी, फ़ैज़ी सरहिन्दी, नियामतुल्ला आदि अन्य फ़ारसी लेखकों ने भी हेमचन्द्र का ब्यौरा दिया। किन्तु युग के वातावरण तथा परिस्थितियों के अनुसार वे भी यथातथ्यों का विवरण विस्तार तथा निष्पक्षता से नहीं दे सके। प्रौढ़ राजस्थानी भाषा में 'दलपत विलास' के ग्रंथकार महाराजा दलपत सिंह भी मध्यकालीन लेखक हैं वे अकबर के दरबार में मनसबदार थे। उन्होंने हेमचन्द्र के विषय में बहुत थोड़ा लिखा और उनके तथ्य प्रायः फ़ारसी इतिहासों से मेल खाते हैं। परन्तु 'हेमचन्द्र द्वारा सुल्तान आदिलशाह की गिरफ़्तारी' का वर्णन सम्भवतः एक मात्र दलपतजी ने ही किया है।

आधुनिक युग में हेमचन्द्र के इतिहास-लेखन का काम हुआ और कुछके इतिहास-विद्वानों ने परिश्रम से तथ्य की खोज करके यथार्थ लेखन का प्रयास किया। ऐसे इतिहासकारों में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, प्रो० मुहम्मद हुसैन आज़ाद और डा० मोती लाल भार्गव उल्लेखनीय हैं।

राहुल जी ने हेमचन्द्र पर अपने विद्वतापूर्ण लेख तथा 'अकबर' ग्रंथ में कई नवीन तथ्यों का प्रतिपादन किया, जैसे हेमचन्द्र भोजपुरी रौतियार वैश्य थे, वह शेरशाह सूरी के कोषाध्यक्ष रह चुके थे, यौवनावस्था में उन्होंने डाकुओं से टक्कर ली, इत्यादि। राहुलजी ने अपने ग्रंथ में घोड़े पर हेमचन्द्र का चित्र और भोजपुरी वैश्यों में विवाह शादियों पर हेमचन्द्र के गाये जाने वाले दो प्रचलित गीत भी दिये हैं। विद्वान इतिहासकार ने यह भी बताया कि हेमचन्द्र के वंशज आजकल नेपाल में निवास करते हैं।

प्रो० मुहम्मद हुसैन आज़ाद ने अपने ग्रंथ 'दरबार-ए-अकबरी' में यथातथ्य लिखा किन्तु कहीं २ उन्होंने निष्पक्षता छोड़ दी और साम्प्रदायिकता के रंग में लिख गये उनकी अनूठी शैली और उल्लासमयी भाषा में मुल्ला बदाँयूनी की आवाज़ सुनाई देती है। तथापि आज़ाद साहब ने शोधकर्ताओं को लाभदायक सामग्री दी।

डा० मोती लाल भार्गव ऐसे इतिहासविज्ञ हैं जिन्होंने हेमचन्द्र का सम्पूर्ण जीवन चरित्र 'हेमचन्द्र और उनका युग' ग्रंथ में वर्णन किया। अंग्रेजी भाषा में लिखी गई यह मूल्यवान कृति सम्भवतः एक मात्र पाँड़त्यपूर्ण ऐसा ग्रंथ है जिसमें सभी इतिहासों में उपलब्ध शुद्ध तथ्य समोये गये। डा० साहब ने हेमचन्द्र के वंश वृत्तान्त और कार्यों का यथोचित विवरण दिया।

इन इतिहासकारों के अलावा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध विद्वान डा० के० सी० यादव ने भी हरियाणा-सम्बन्धी अपने अनेक ग्रंथों एवं लेखों में हेमचन्द्र की जानकारी प्रदान की। उन्होंने इतिहास में हेमचन्द्र का यथोचित स्थान निर्धारित करने का सफ़ल प्रयास किया।

महाराजा हेमचन्द्र विक्रमादित्य
(श्री राहुल सांकृत्यायन के सौजन्य से)

हेमचन्द्र का प्रारम्भिक जीवन

पिछले एक हज़ार वर्षों में भारत-भूमि ने हेमचन्द्र जैसा शूरवीर और साहसी सेनापति विरला ही पैदा किया। उसकी तुलना राणा साँगा, शेरशाह और शिवाजी से की जा सकती है। उसने बाईस लड़ाईयों में विजय प्राप्त की और तुग़लकाबाद की लड़ाई में मुग़लों को हराकर वह 'महाराजा हेमचन्द्र विक्रमादित्य' की उपाधि से दिल्ली के सिंहासन पर विराजमान हुआ। यदि पानीपत की दूसरी लड़ाई में अचानक आंख में तीर लगने से वह युद्ध न हारता तो भारत का इतिहास कुछ और ही होता।

हेमचन्द्र का जन्म १५०० के आसपास रेवाडी के ढूसर वैश्य परिवार में हुआ था। उसके क़दीमी पुरखे हरियाणा की बस्ती नारनौल में रहा करते थे। कालांतर में किसी कारण से वे रेवाडी में आ बसे। वे छोटे दर्जे के व्यपारी थे और नगर की गलियों-बाज़ारों में नमक, हल्दी आदि छोटी वस्तुए बेचकर गुज़र करते थे। परन्तु हेमचन्द्र के दादा जयपाल दास को सरकार की ओर से 'राय' की उपाधि मिली हुई थी। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जयपाल दास की आर्थिक दशा अच्छी थी और वह अपने इलाके में जनप्रिय पुरुष रहे होंगे।

महापण्डित राहुल साँकृत्यायन के अनुसार हेमचन्द्र पूर्वी बिहार में सहसराम के रौनियर वैश्य थे। उसका पिता एक धनाढ्य और इलाके में सम्मानित सार्थवाहा यानि व्यापारी था। उस सार्थवाहा ने अपने पुत्र हेमचन्द्र को व्यापार-संबंधी विद्या दिलवाई और कई बार उसे समुद्र में जाने वाली नदियों के सार्थों

के साथ भेजा था। युवा हेमचन्द्र ने एक ओर अपनी विद्या-बुद्धि से अपने पिता को प्रसन्न किया और दूसरी ओर अपनी बहादुरी को उसने कई बार डाकुओं के सामने दिखाया था। राहुल जी लिखते हैं रौनियर वैश्यों में आज भी विवाह-शादियों पर हेमचन्द्र के गीत गाये जाते हैं।

हेमचन्द्र के पिता पूरनमल भी 'राय' की पदवी से विभूषित हुये। वह साधु-वृत्ति के वैष्णवी वैश्य थे, इसलिये उनका अधिकांश समय पूजा-पाठ और कथा-कीर्तन में लगता था। प्रायः सन्त महात्मा लोग उनके घर पर आते रहते थे। पूरनमल एक अच्छे कवि और सुरीले गायक भी थे।

उस युग की महाजनी सभ्यता में बाल-विवाह का रिवाज था। पूरनमल का विवाह भी बाल्यावस्था में कर दिया गया। दो पुत्र हुये--बसन्त राय और जुझर राय। बसन्त राय बाद में हेमचन्द्र कहलाये। उसका वास्तविक नाम हेमूशाह या हेमराज था। दिल्लीपति बनने पर 'महाराजा विक्रमादित्य' की उपाधि के साथ 'हेमचन्द्र' नाम मिलता है।

गृहस्थ में प्रवेश करने के बाद भी पूरनमल की रुचि सांसारिक कार्यों से विमुख रही। वह परिवार के प्रति अपना दायित्व अच्छी तरह न निभा सके और बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का ओर ध्यान न दिया। परन्तु मेधावी हेमचन्द्र ने स्थानीय मौलवियों-पण्डितों से उर्दू, फ़ारसी, संस्कृत, हिन्दी पढ़ ली। काम चलाऊ गणित भी सीख लिया।

हेमचन्द्र अभी किशोरावस्था में थे कि उनके पिता पूरनमल को सांसारिक जीवन के प्रति वैराग्य हो गया। अतः घर-परिवार

छोड़कर वह सच्ची शान्ति के लिए सत्गुरु की खोज में निकल पड़े। उस युग में भक्ति की लहर चल रही थी। अन्ध-विश्वासों और साम्प्रदायिकता से त्रस्त हुए लोग सूफ़ी-फ़कीरों, सन्तो, साधु-महात्माओं और समाज सुधारकों का आश्रय प्राप्त करने में लगे थे। पूरनमल भी जागृत अवस्था में थे। कुछ दिन घूमने फिरने के बाद वह वृन्दावन जा पहुंचे और राधावल्लभी साम्प्रदाय के जन्मदाता महात्मा हितहरिवंश के शिष्य बन गये।

पूरनमल के गृहत्याग के बाद उनकी पत्नी को घरबार संभालना पड़ा और परिवार के भरण-पोषण की सारी ज़िम्मेवारी बड़े पुत्र हेमचन्द्र के कन्धों पर आ पड़ी। आर्थिक दशा बिगड़ गई। अतः विकट परिस्थितियों में हेमचन्द्र ने पढ़ना-लिखना छोड़ दिया और अपने क़दीमी पुरखों की तरह गलियों-बाज़ारों में छोटी-छोटी वस्तुएं बेचने लगा। नमक बेचता हुआ वह 'लूण लेलो, लूण लेलो।' चिल्लाकर फेरी लगाया करता था। कुछ समय के लिये उसने रेवाड़ी की मण्डी में तुलाई भी की। खोंचा भी लगाया। इस तरह दो-चार वर्ष के घोर परिश्रम से उसने अपनी आर्थिक दशा में कुछ सुधार कर लिया।

हेमचन्द्र स्वाभिमानी और आश्चर्यजनक बुद्धिमान व्यक्ति था। इसलिये वह श्रमजीवी नहीं रह सकता था। अतः उसे अपने ये छोटे काम अखरने लगे। उसके बाप-दादा 'राय' की उपाधि से अलंकृत थे। इसलिये भी वह अपनी वर्तमान दशा पर कुढ़ने लगा। आखिर उसने रेवाड़ी छोड़ दी और परिवार को लेकर दिल्ली चला गया। यहां छावनी में किरयाने की दुकान खोल ली।

हेमचन्द्र का दिल्ली आगमन उसके चमत्कारिक जीवन का

'पहला मोड़' सिद्ध हुआ। तत्कालीन सुल्तान स्लीमशाह एक धर्मनिर्पेक्ष शासक था और वित्तीय कार्यों के लिये वह हिन्दुओं की नियुक्तियाँ करता था / उसकी दृष्टि में हेमचन्द्र आ गया। सलीम शाह ने उसे सरकारी नौकरी में लिया।

हेमचन्द्र अपनी चारित्रक ईमानदारी, बौद्धिक सूझबूझ, साहस और परिश्रम से पौडी-दर-पौडी ऊपर चढ़ता चला गया और देखते २ राजपद पर जा पहुंचा।

दिल्ली छावनी के एक साधारण दुकानदार हेमचन्द्र को सुल्तान स्लीमशाह ने देखा, परखा और तुरन्त सरकारी पद पर ले लिया। परन्तु स्लीमशाह से हेमचन्द्र का सम्पर्क कैसे हुआ ? सुल्तान से उसका परिचय किसने कराया ? इन प्रश्नों के लिया सभी इतिहासकार मौन हैं।

हेमचन्द्र और सुल्तान स्लीमशाह की प्रथम भेंट से सम्बन्धित ऐसी एक जनश्रुति है कि एक रात सुल्तान अपने एक सलाहकार सरमस्तखाँ शेरवानी के साथ महल की छत बैठा था। वे कुछ राजनैतिक समस्याओं पर गुप्त मन्त्रणा कर रहे थे। आधी रात बीत गई। सुल्तान को अचानक दूर छावनी की ओर एक रोशनी सी दिखाई दी। उसने समझा कि यह पहरेदारों की रोशनी है, किन्तु सरमस्त खां के बताने पर कि वहां कोई पहरेदार नहीं लगाया जाता और सम्भवतः यह किसी दुकान की रोशनी है, सुल्तान ने पता करने की इच्छा प्रकट की और सिपाही भेज दिया गया। कुछ देर के बाद वह सिपाही एक दुकानदार को साथ लेकर हाज़िर हुआ। यह दुकानदार हेमचन्द्र था। सुल्तान ने उससे पूछा 'इस समय तक चिराग़ तुमने ही जला ही रखा है ?

'हाँ, जहांपनाह'

'क्ता कर रहे से ?'

'जहाँपनाह ! मैं दुकान का हिसाब कर रहा हूं।'

'कोई बहुत बड़े व्यपारी हो, बनज इतना फैला हुआ है कि आधी रात तक भी हिसाब करना पड़ता है ? देखने में तो मामूली दुकानदार लगते हो।'

'जहां पनाह ! हम छोटे बड़े सभी व्यपारियों के लिये शुद्ध हिसाब रखना आवश्यक होता है। पैसेपैसे के जमा-खर्च का मिलान किये विना हमारे लिये आराम हराम है।'

हेमचन्द्र की बात सुनकर सुल्तान बहुत प्रभावित हुआ। वह गुणियों का पारखी था। उसने हेमचन्द्र में श्रमशीलता और कुशाग्रता के गुण देखकर उसे सरकारी ठेकेदार के शोभनीय पद पर लगा दिया।

एक अन्य जनश्रुति के अनुसार दिल्ली में हेमचन्द्र को एक शाही ब्यापारी मिल गया जो उसके पिता लाला पूरनमल का मित्र रह चुका था। कुछ दिनों के बाद हेमचन्द्र ने उसकी दुकान में साझेदारी कर ली। उस मोदी ने उसे सुल्तान से मिला दिया। सुल्तान ने उसकी आश्चर्य-जनक योग्यता परखकर उसे सरकारी पद पर ले लिया।

उस युग की आर्थिक व्यवस्था में सरकारी ठेकेदार की हैसियत बहुत बड़ी थी। राज्य के उच्चाधिकारियों को कई निजि तथा सरकारी कार्यों के लिये उसके दरवाज़े खटखयाने पड़ते थे। हेमचन्द्र ने अपने सौम्य स्वभाव और कर्तव्य के प्रति निष्ठा से लोगों के मन जीत लिये। सुल्तान भी उसके सद्गुणों से प्रभावित

हुआ और उसका हार्दिक सम्मान करने लगा। कुछ समय बाद हेमचन्द्र सुल्तान के इतना समीप आ गया कि वह कूटनीतिक मामलों पर भी उसकी सलाह लेने लगा।

उत्कर्ष की सीढ़ियों पर

स्लीमशाह के शासन में सल्तनत की आर्थिक दशा बिगड़ने लगी। दो वर्ष से सैनिकों का वेतन नहीं दिया गया। वस्तुओं के दाम बढ़ रहे थे। सरकारी दफ्तरों में रिश्वत का बोल बाला था। इन बुराईयों को दूर करने के लिये सुल्तान ने अनेक बड़े अधिकारियों के तबादले किये, योग्य व्यक्तियों की पदोन्नति की, अर्थ व्यवस्था में सुधार लाने के लिये सरकारों में ईमानदार और कुशल अधिकारी भेजे।

इस प्रक्रिया में सुल्तान आदिल शाह ने हेमचन्द्र को 'शहनगा-ए-बाज़ार' के पद पर नियुक्त किया। यह पद बहुत ही महत्वपूर्ण था। राज्य की सारी वाणिज्य प्रणाली का प्रमुख 'शहनगा-ए-बाज़ार' था। बाज़ार-मण्डी के नियमों का सख्ती से पालन, करों की उगाही, मूल्य-सूचियों का निर्धारण और माप-तोल तथा मुद्राओं का निरीक्षण आदि कार्यों से संबद्ध यह विभाग उसकी देखरेख में था। इस पद पर आनेसे सल्तनत में हेमचन्द्र का स्थान इतना ऊंचा बन गया कि अमीर-वज़ीर उसके पास पहुंचने का प्रयास करते थे, धनी-प्रतिष्ठित व्यपारी लोग उसके सामने सिर झुकाने लगे। इतिहास को टटोलने से यह कहीं पता नहीं लगता कि 'शहनगा-ए-बाज़ार' की हैसियत से हेमचन्द्र ने सल्तनत की आर्थिक व्यवस्था में क्या सुधार किये, किन्तु आगे की घटनाओं से यह स्पष्ट है कि अपने आकर्षक आचरण से हेमचन्द्र

जनता में लोकप्रिया बन गया।

अनेक पदों पर हेमचन्द्र की अद्भुत सफलता ने उसे सुल्तान स्लीमशाह के इतना निकट सम्पर्क में ला दिया कि नियाज़ियों के विरुद्ध जब सुल्तान ने पंजाब की ओर कच किया तो वह हेमचन्द्र को भी साथ ले गया। १५५२ ई० में हुमायूं का भाई कामरान सलीम शाह से सहायता मॉगने काबुल से पजाब आया। सुल्तान कामरान का स्वागत करने के लिये जिन अधिकारियों को भेजा था, उनकी अगवाई हेमचन्द्र ने की। यही वात आधुनिक इतिहास कार मुहम्मद हुसैन आज़ाद ने कही। हेमचन्द्र पर तीखे व्यंग्य करते हुये उन्होंने लिखा–'वह दिन प्रतिदिन कुशल कार्यकर्त्ता और विश्वास-योग्य सामंत होता गया और जो उच्चकोटि के राज्य-धिकारियों के कामथे, वे उसे मिलते गये। अति उस समय हुई जब हुमायूं ईरान से काबुल में आ गया और कामरान भागकर इधर आया तो दरबार-ए-स्लीमशाही की तरफ़ से लाला हीमूराय इसे लेने गये। यह बात कामरान को भी बुरी लगी, किन्तु क्या हो सकता था।' इन पंक्तियों को देखकर यह पता लगता है कि हेमचन्द्र के तथ्यों को प्रस्तुत करने में इतिहासकार कितनी बेईमानी से काम ले रहे हैं। आज़ाद साहब यह कहना चाहते है कि हेमचन्द्र इतना योग्य नहीं था कि उसे सूर-सल्तनत में उच्च-कोटि का राज्यधिकारी बना दिया जाये। उन्होंने जिस अन्दाज से 'लाला हेमूराय' लिखा, वह शुद्ध तथ्यों को ऐतिहासिक कूड़ा बनाने का एक उदाहरण है।

साम्प्रदायिक इतिहासकार हेमचन्द्र के लिये कुछ भी कहें, किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि वह सोलहवी शताब्दी का एक

तूफ़ानी महापुरुष था।

पंजाब से लौटने के बाद सुल्तान स्लीमशाह षड़यंत्रकारी तत्वों से घिर गया। उसकी दमनकारी नीति के कारण सल्तनत के बड़े बड़े अमीर और सूर रिश्तेदार उसे समाप्त करने की योजनायें बनने लगे। ऐसी परिस्थियों में अपनी रक्षा के लिये सुल्तान को हेमचन्द्र पर ही विश्वास था। इसलिये उसने उसे गुप्तचर विभाग का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया।

गुप्तचरों के अध्यक्ष-पद पर रहकर हेमचन्द्र ने सल्तनत की सुरक्षा और सुल्तान की प्राण-रक्षा के लिये सराहनीय कार्य किये। उसने अनेक षड़यन्त्रों का पता लगाया और विद्रोही तत्वों की खोज की।

सम्भल का सूबेदार मम्रेज़खाँ सुल्तान बनने के स्वप्न देख रहा था। वह शेरशाह का चचेरा भाई और स्लीमशाह का साला था। उसने योजना बनाई कि बीमार सुल्तान की सम्भावित मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी शहज़ादा फ़िरोज़ की हत्या करके सिंहासन पर अधिकार कर लिया जाये। मम्रेज़खां की गतिविधियों से हेमचन्द्र के गुप्तचरों ने उसके इरादे का पता लगा लिया और सुल्तान को सावधान कर दिया। मम्मरेज़ खाँ अपने बचाव के लिये पागल होने का बहाना करने लगा। यदि वह ऐसा न करता तो मरवा दिया जाता या उसकी आँखे निकाल ली जाती। किन्तु उसके दुष्ट इरादे का पता लगने के बाद सुल्तान इस काँटे को निकाल देना चाहता था। इस आशय से उसने अपनी मलिका बीबी बाई की अनुमति चाही। परन्तु भाई के मोहवश बीबी बाई ने स्लीमशाह के सुझाव पर अनुमति देने से

साफ इंकार कर दिया।

३० अक्तूबर १५५३ को सुल्तान स्लीमाशाह की मृत्यु हो गई। उसका इकलौता पुत्र फ़िरोज़खां सिंहासन का उत्तराधिकारी था। सामन्तों ने विधिवत राज्याभिषेक करके उसे सिंहासन पर बिठाया। उस समय वह छः वर्ष का था।

फ़िरोज़ शाह को सुल्तान बने केवल तीन दिन हुये थे कि उसका मामा मम्रेज़खाँ शाही महल में आया। उसने पागलों की तरह से मैले कुचैले कपड़े पहने हुये थे। पहरेदारों के रोकने पर उसने अपने बहनोई की मृत्यु से दुःखी विधवा बहन को सांत्वना देने का बहाना बनाया। भांजे के सामने जाकर उसने तलवार खींच ली। उसका यह ढंग देखकर बीबी बाई को बहुत आश्चर्य हुआ वह अपने पुत्र और भाई के बीच में खड़ी हो गई और चिल्लाई—'मम्रेज़खाँ, तुम क्या स्वपन देख रहे हो। क्या तुम्हें भगवान का भय नहीं है।' मम्रेज़खाँ ने कहा—'तेरे छोकरे के दिन खेलने-खाने के थे, सुल्तानी करने के नहीं।' बीबी बाई का रोना धोना सब विफल हुआ और मम्रेज़खाँ ने फ़िरोज़ का सिर धड़ से अलग कर दिया।

फ़िरोज शाह की हत्या के बाद मम्रेज़खां ने 'सुल्तान आदिल शाह सूर' की उपाधि धारण की और राज-सिंहासन पर विराज मान हुआ। इस सारे घटनाचक्र में हेमचन्द्र की क्या प्रतिक्रिया रही, इस विषय में फ़ारसी इतिहासकारों ने कुछ नहीं लिखा। परन्तु समकालीन लेखक महाराजा दलपत सिंह ने कहा है—'बादशाह से नमक हरामी करने के कारण मम्रेज़खा पागल हो गया, तब उसके वकील हेमू ने उसे काजिर में कैद करके बादशाही

छीन ली।' श्री राहुल साँकृत्यायन ने लिखा है--'हेमचन्द्र को मम्रेजखां का यह कुकर्म पसन्दन आया, किन्तु कुछ करना सम्भव नहीं था।' सच तो यह है कि शेरशाह के वंश में मम्रेज़खाँ के अलावा कोई भी दूसरा व्यक्ति गद्दी का सीधा उत्तराधिकारी नहीं था, इस कारण हेमचन्द्र ने हिन्दू-परम्परा के अनुसार उसे वैध मानकर सुल्तान स्वीकार कर लिया। अन्य सरदार भी उसी के पक्ष में रहे। सल्तनत के हित में भी यही ठीक था।

जुनैद खां पर तेज़ प्रहार

आदिलशाह एक मूर्ख और विलासप्रिय सुल्तान था। एक सुरीले गवैये के अतिरिक्त उसमें दूसरा कोई गुण नहीं था। वह ज्यादातर समय संगीतशाला में बिताया करता था। सरकारी कार्यों में उसे विशेष रुचि नहीं थी। यद्यपि सिक्कों एवं मोहरों पर वह 'आदिलशाह' था, किन्तु अफ़गान इसे 'अधली' यानि अंधा कहा करते थे और हिन्दुओं ने उसे 'अदिली' अर्थात 'मूर्ख' की संज्ञा दी हुई थी।

फ़िरोजशाह की हत्या से उसकी बहुत बदनामी हुई। इस कलंक को धोने के लिये उसने लोगों में धन बांटना तथा लापरवाही से खर्च करना शुरु कर दिया। धन बाँटने का उसका एक अनोखा तरीका था. फ़रिश्ता ने कहा है--'अपने से पहले के सुल्तान विशेषत: मुहम्मद तुग़लक की दान-वीरता की प्रशंसा सुनकर और लुटाऊपन को ग़लती से उदारता मानकर आदिल शाह ने शाही ख़जाने दरवाजे के खोल दिये। बिना किसी भेदभाव के खुले हाथ से वह लोगों में धन बांधने लगा। घोड़े की पीठ पर

सवारी करता हुआ वह सोने की नोक वाले तीर फैंका करता था। इन तीरों को उठाने वाले लोग उन्हें दस बारह रुपये प्रति तीर की दर से सरकार को बेच दिया करते थे' इस तरह वह सल्तनत का ख़जाना नष्ट करने लगा। परन्तु आदिलशाह के इस मूर्खतापूर्ण कार्य से लोगों ने उसके अत्याचार को भुला दिया और फ़िरोजशाह की हत्या सहन कर ली।

लोगों का रुख अपनी ओर देखकर उसने ग्वालियर से चुनार प्रस्थान किया और वहां शेरशाही ख़ज़ानों पर कब्जा कर लिया। सल्तनत की आर्थिक दशा को सुदृढ़ करने के लिये उसने स्लीमशाही अमीरों की जागीरें छीननी शुरु करदी। सुरा-सुन्दरी-संगीत से भी अधिक लीन रहने लगा था। परिणामस्वरूप चारों तरफ उपद्रव और विद्रोह फैलने लगे।

सबसे पहला बड़ा उपद्रव जुनैदखाँ ने किया। उसने अजमेर के हाकिम को साथ मिलाकर उसके परगनों में लूटमार मचा दी। औरतों-बच्चों को कैद कर लिया और लोगों से धन लूटकर अपने आदमियों में बाँट दिया। शाही सेना का सामना करने के लिये उसने एक बड़ी सेना खड़ी कर ली। सुल्तान ने जुनैदखां के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही करने के निमित्त एक सेनानायक जमालखां को सेना देकर रवाना किया। जमालखां ने अजमेर की ओर कूच किया और जुनैदखाँ पर हमला कर दिया।

शाही सेना की इस पराजय से सुल्तान आदिलशाह को भारी परेशानी हुई। वह किसी अनुभवी सेनायक के संचालन में पुन: सेना भेजने का विचार कर रहा था कि गुप्तचर विभाग के अध्यक्ष हेमचन्द्र ने जुनैदखाँ के विरुद्ध कूच के लिए अपनी सेवायें

प्रस्तुत की। हेमचन्द्र का सुझाव सुनकर सुल्तान आदिलशाह बहुत हैरान हुआ। वास्तव में ग्वालियर के राजदरबार ने अभी तक उसकी योग्यता नागरिक कार्यों में आंकी थी, किन्तु वे उसकी सैनिक प्रतिभा से परिचित नहीं थे। हेमचन्द्र एक व्यापारी था, उसने कोई सैनिक प्रशिक्षण भी नहीं लिया था। वह राजपूत भी नहीं था। वह वैश्य था जिसे उस समय गैर-युयुत्सु जाति की संज्ञा दी हुई थी। इन कारणों से सुल्तान उसे सैन्य-संचालन सौंपने में संकोच कर रहा था। परन्तु दरबार के कुछ अमीरों ने हेमचन्द्र के प्रति ईर्ष्यावश, सुल्तान से आग्रह किया कि सेना का संचालन उसे सौंप दिया जाये। दरअसल, उन अमीरों का अनुमान था कि जुनैदखाँ से हेमचन्द्र को पराजय मिलेगी जिससे वह अपमानित होगा और सल्तनत में उसका महत्व क्षीण हो जायेगा

आदिलशाह ने हेमचन्द्र तथा राजदरबारियों का सुझाव मान लिया और उसे चार हज़ार सेना तथा चार हाथियों के साथ प्रस्थान करने का आदेश दे दिया।

हेमचन्द्र अजमेर के परगनों में दाखिल हुआ। दम्भी जुनैदखां ने उसके आने की कोई परवाह न की। जमालखाँ को हराकर उसे अपनी शक्ति पर इतना अभिमान हो गया था कि उसने शाही सेना की उपेक्षा करके यह कहा—'मेरे सईस, उन खूंटो से जिनसे वे अपने घोड़े बांधते हैं, उसका सिर फोड़देंगे।' मिथ्याभिमान से उसने स्वयं सेना का संचालन नहीं किया और अपने सेनानायक दौलतखां को हेमचन्द्र पर आक्रमन करने का आदेश दिया। उसने यह भी कहा—'रणक्षेत्र में हेमचन्द्र को आहत न जाये, उसे हमारे हजूर में हाज़िर किया जाय।'

दौलत खां ने हेमू के शिविर की ओर कूच किया। दिन छिपने से पहले उसने शत्रु सेना से एक कोस इधर डेरा डाल दिया और हेमचन्द्र को सन्देश भजवाया–'ओ बनिये, तू अफ़गानों के युद्ध में क्यों दखल देता है। जा, अपने तकड़ी-बाट सम्भाल।'

हेमचन्द्र ने कूटनीति से इन शब्दों पर क्रोध प्रकट नहीं किया और शत्रु को अपनी काल्पनिक सुरक्षा में रहने दिया। अगले दिन प्रभात वेला में दोनों सेनायें एक दूसरे मे जूझ पड़ीं। घमसान की लड़ाई हुई जिसमें शाही सेना को विजय मिली।

जुनैदखां को इस हार का पता लगा तो उसका अभिमान चूर २ हो गया। अब उसने निर्णयाक युद्ध के लिये सेना सुसज्जित की। उसके पास आठ हज़ार घुड़सवार, तीन हज़ार पैदल, दस जंगी हाथी और कुछ तोपें भी थी। सेना का संचालन उसने स्वयं किया। दिन भर कूच करता हुआ वह हेमचन्द्र के शिविर के समीप पहुंच गया। पिछली लड़ाई की हार से उसके सैनिक घबराये हुये थे। जुनैद खाँ ने उन्हें एकत्रित करके उनमें साहस का संचार किया। हेमचन्द्र भी शत्रु की भारी शक्ति को देखकर परेशान था। उसके पास केवल चार हज़ार सैनिक तथा चार हाथी थे और इन में से कुछ सैनिक पिछले युद्ध से घायल पड़े थे। ऐसी स्थिति में उसने रात्रि के अंधकार में शत्रु-शिविर पर आक्रमण करने की योजना बनाई। शत्रु पर दो तरफ़ से आक्रमण करने के लिये उसने दो हज़ार पाँच सौ सैनिक तैयार किये और शेष सुरक्षित रख लिये।

आधी रात गुज़रने पर हेमचन्द्र ने सैनिकों को शिविर से बाहर निकाला और अचानक धावे की व्यवस्था करके उन्हें आगे

बढ़ाया। जुनैदखाँ के सैनिक रात्रि के तीन पहर तक सजग-सतर्क रहे, किन्तु अन्तिम पहर में वे निश्चिन्त होकर सुखद नींद सो रहे थे कि हेमचन्द्र के सैनिक उन पर टूट पड़े। तुरही और नगाड़ों की आवाज़ों ने उन्हें जगा दिया था, किन्तु हेमचन्द्र के सैनिकों ने उन्हें इतना समय नहीं दिया कि वे कवच पहनकर तैयार हो जाते। हेमचन्द्र के सैनिक हाथों में तलवारें-भाले लेकर शत्रु-सैनिकों को काटते रहे। जुनैदखां कुछ बचे-खुचे सैनिक लेकर जंगल में भाग गया।

शेरशाह के १५३९ ई० में हुमाँयू पर किये गये अचानक हमले की तरह यह हमला भी पूरी तरह सफल रहा। इसलिये अगर इसे 'चौसा का लघु-संस्करण कहा जाये तो यह अनुचित न होगा। हेमचन्द्र ने शत्रु की अपार सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया जिसमें दो सौ ऊँट, घोड़े, हाथी, असंख्य शस्त्र और अपार धन-राशि थी। सम्पत्ति का आधा भाग हेमचन्द्र ने इनाम के तौर पर सैनिकों में बांट दिया और आधा भेंट स्वरूप सुल्तान को भजवा दिया।

हेमचन्द्र के ग्वालियर लौटने पर राजदरबार में सेनापति तथा सैनिकों का भव्य स्वागत हुआ। सुल्तान ने सेनापति को बैजनी रंग की रत्न-जड़ित खिल्लत भेंट की। परन्तु हेमचन्द्र की नीति अपने सैनिकों को प्रोत्साहित करने की थी। वह उन्हें केवल वेतन भोगी सिपाही नहीं समझता था, बल्कि सल्तनत की सुरक्षा एवं व्यवस्था में उनका योगदान सबसे अधिक मानता था। इसलिये उन्हें उत्साहित करने के निमित्त उसने सुल्तान से कहा कि सैनिकों की वीरता का पुरस्कार उन्हें मिलना चाहिये। हेमचन्द्र की शिफ़ारिश के अनुसार युद्ध में प्रशंसनीय कार्य करने

वाले सैनिकों को सुल्तान ने ऊँचे मनसब और मूल्यवान खिल्लतें देकर पुरस्कृत किया।

ताजखाँ किरानी का दमन

जुनैदखां के उपद्रव से अधिक भयंकर ताजखां किरानी का विद्रोह था। ताजखां सम्भल का सूबेदार था और सुल्तान स्लीम शाह का विश्वसनीय अमीर रह चुका था। यद्यपि वह ऊंचे दर्जे का सेना-नायक और वीर योद्धा था, किन्तु सल्तनत के जन-साधारण ताजखां को ग्लानी की दृष्टि से देखते थे, क्योंकि उसने शेरशाह के सेनापति ख्वासखां को धोखे से मरवा दिया था। ख्वासखां का धड़ दिल्ली के बाज़ार में फेंका गया था। दिल्ली के नागरिकों की उसके प्रति असीम श्रद्धा थी। इसलिये तीन दिन तक लोग उसके सिर-धड़ पर फूल बरसाते रहे। ऐसे लोकप्रिय पुरुष के हत्यारे ताजखां किरानी को जनता विशेषतः अफ़गान क्षमा नहीं कर सकते थे।

सुल्तान आदिलशाह ने ताजखां किरानी को अपने प्रमुख सामंतों में रखा हुआ था किन्तु दरबार की कुछेक घटनाओं से वह घबरा गया और अपने को राजधानी में असुरक्षित समझ कर उसने सुल्तान से विद्रोह का मार्ग अपना लिया।

एक दिन दरबार लगा हुआ था कि सुल्तान का बहनोई इब्राहीम दरबार में आया। उसे देखकर सभी अमीर-वज़ीर खड़े हो गये, किन्तु ताजखां अपने स्थान पर बैठा रहा। इस व्यवहार से इब्राहीम ताजखां से नाराज़ हो गया। कुछदिन बाद जब

ताजखाँ सुल्तान से मिलने आया तो एक अफ़गान ने उस पर हमला करके उसे घायल कर दिया।

एक अन्य घटया यह हुई कि दरबार में जागीरें बांटने पर झगड़ा हो गया। कटु वाक्युद्ध के बाद तलवारे निकल आई और सुल्तान को महिला-भवन में भागकर अपने प्राण बचाने पड़े। दरबार में इतना हुल्लड़ मचा कि कई व्यक्ति मारे गये। सुल्तान की नाक के नीचे इस उत्पात को देखकर ताजखाँ ने अनुमान लगा लिया कि सल्तनत की दशा दिन प्रतिदिन बिगड़ रही है और यहां उसका जीवन रक्षित नही हैं। ऐसी मनःस्थिति में ताजखाँ ने अपने अनुचारी वर्ग के साथ ग्वालियर से निकल कर सुल्तान से विद्रोह कर दिया।

हेमचन्द्र ने विद्रोही ताजखां के विरुद्ध प्रयाणा किया। उसने बड़ी तेज़ गति से कूच की और आगरा कन्नौज के बीच छपरामाऊ के स्थान पर किरानियों को जा घेरा। घोर युद्ध हुआ जिसमें शाही सेना ने किरानियों को करारी हार दी।

रणक्षेत्र से निकलकर ताज़खां चुनार की ओर भागा। उसने कई स्थानों पर खज़ाने लूट लिये और इस धन से सैनिक भर्ती करके छपरामऊ की क्षतिपूर्ति करली। उसने ज़मींदारों के लगभग सौ हाथी जो नदी के किनारे परगनों में चर रहे थे पकड़ लिये जिसके फलस्वरूप उसकी शक्ति बहुत बढ़ गई। तदनन्तर ताजखां अपने भाईयों से जा मिला। उसके भाईयों के पास गंगा-तट और खवासपुर टाँडा में कई जागीरें थी। किरानी बन्धुओं ने ताजखाँ के विद्रोह का समर्थन किया। उन्होंने आस-पास के जागीरदारों को सुल्तान से विद्रोह की प्रेरणा दी और उन्हें अपने साथ मिलाने के

निमित्त सन्देश भेजे।

किरानियों की गतिविधियों को देखकर सुल्तान आदलशाह को भारी चिन्ता हुई। विद्रोहियों के दमनार्थ अब उसने स्वयं सेना संचालन का निर्णय किया। उसने एक बड़ी सेना, भारी तोपखाना तथा जंगी हाथियों की व्यवस्था की और हेमचन्द्र को साथ लेकर चुनार की ओर प्रस्थान किया। किरानी भाईयों ने अपनी सेनायें और युद्ध-सामग्री ताजखां के हवाले कर दी। कुछ जागीरदार भी विद्रोहियों में आ मिले। परिणाम-स्वरूप ताजखाँ की विशाल वाहिनी चुनार के रणक्षेत्र में आ खड़ी हुई जिसे देखकर सुल्तान हतोत्साहित हो गया। विकट स्थिति में हेमचन्द्र ने सुल्तान का धैर्य बंधाया और स्वयं सेना-संचालन का आग्रह किया। सुल्तान ने हेमचन्द्र को हाथी, तोपखाना तथा सेना देकर शत्रु पर आक्रमण करने का आदेश दिया।

हेमचन्द्र ने चुनार नदी पार करके सेना का व्यूह बनाया। युद्ध शुरु करने की पहल किरानियो ने की जिसके कारण हेमचन्द्र को व्यूह में रहकर शत्रु पर प्रहार करने का लाभ प्राप्त हो गया। दोनों तरफ़ से भारी तोपों का प्रयोग हुआ। हाथियों और पैदल दस्तों में भी टक्करें हुई। परन्तु हेमचन्द्र के तोपचियों के घातक गोलों के सामने ताजखाँ के सैनिक अधिक देर न ठहर सके। और उनके पांव उखड़ गये। शाही घुड़सवारों ने किरानियों का दूर दूर तक पीछा किया और उन्हें अपने भालों-तलवारों का शिकार बनाया। इस लड़ाई का सारा दृश्य सुल्तान ने किसी ऊंचे स्थान से स्वयं देखा था।

चुनार के युद्ध में हारकर ताजखां ने जौनपुर में अपने भाई

अहमदखाँ किरानी के पास आश्रय लिया । दोनों भाईयों के मेल से उत्पन्न स्थिति ने सल्तनत के लिये नया ख़तरा पैदा कर दिया, इसलिये सुल्तान ने जौनपुर के हाकिम अहमदखाँ किरानी को आदेश भेजा कि वह अपने भाई ताजखां को समझाये कि वह सल्तनत के प्रति निष्ठावान रहकर राजदरबार में लौट आये। अहमदखां ने अपने भाई को समझाने का लाख प्रयत्न किया, किन्तु ताजखाँ ने उसकी एक न सुनी और जौनपुर छोड़कर बंगाल की ओर भाग गया।

ताजखां के पलायन से नई स्थिति पैदा हो गई। हेमचन्द्र ने एक बार पुनः सेना सुसज्जित की और किरानियों से निपटने के लिये द्रुतगति से प्रयाणा किया । किरानी विद्रोही दो युद्धों में हेमचन्द्र से हार चुके थे। अब उनमें इतना साहस नहीं था कि वे टिक कर हेमचन्द्र से युद्ध करते। वे भागते चले गये। हेमचन्द्र भी उन्हें बंगाल की सीमा तक खदेड़ता चला गया । आखिर किरानियो ने ख्वासपुर टांडा में जाकर दम लिया । अब उनमें वापस लौट कर सूर प्रदेशों में उपद्रव करने की शक्ति शेष नहीं बची थी, इसलिये शाही सेना लौट आई।

किरानी बिद्रोहियों के दमन की सफ़लताओं से हेमचन्द्र को आसमानी कीर्ति मिली। अब उसे उच्चकोटि का सेनानायक और वीर योधा माना जाने लगा । अफ़गानों में उसके रण-चातुर्य और शौर्य की धाक बैठ गई।

अभियान से लौटने पर सुल्तान आदिलशाह ने हेमचन्द्र का भव्य स्वागत किया अब्दुल्ला लिखते हैं—' ताजखाँ किरानी पर गौरवपूर्ण विजय की कीर्ति अर्जित करके हेमू अपने स्वामी के पास

गया। अदली ने बड़े सम्मान के साथ उसका स्वागत किया और उसे 'विक्रमाजीत' की उपाधि प्रदान की । तभी से सल्तनत का सारा शासन उसके हाथ में आ गया और उसने अपना प्रभुत्व ऐसा जमाया कि अदली कोई भी आदेश नहीं दे सकता था, किन्तु अपने खाने पीने का प्रबन्ध वही करता रहा तथा हाथी भी उसीके अधीन बने रहे।' अब्दुल्ला के इस कथन को यदि यथार्थ मान लिया जाये तो इसका यह अर्थ है कि इन विजयों के बाद अब आदिलशाह नाम मात्र का सुल्तान था और सल्तनत की सारी शक्ति हेमचन्द्र के पास थी इसी बात को इतिहासज्ञ अबुल फ़ज़ल ने अपनी स्वभाविक चाटुकारिता के रग में इस तरह कहा—' हेमू सभी तरह की नियुक्तियाँ करता था, पदों से हटाता था, और नयाय कार्य करता था। दूरदर्शिता से उसने शेरखां तथा स्लीमखां के खज़ानों एवं हाथियों पर अधिकार कर लिया।'

अकबर के निर्लज्ज चाटुकार अबुल फ़ज़ल ने यहां जानबूझ कर शेरशाह को 'शेरखाँ' 'लखा। तब भला वह हेमचन्द्र के तथ्यों का यथार्थ वर्णन कैसे कर सकता था । हेमचन्द्र ने तीन बार-आगरा, दिल्ली और पानीपत में अबुल फ़ज़ल के आश्रयदाता अकबर के मुंह पर तलवार खींची थी, इसलिये वह उसे कैसे छोड़ सकता था। उसने तो मन की भड़ाँस निकालने के लिये यही लिखना था कि हेमचन्द्र ने दूरदर्शिता से सूर सुल्तानों के खज़ानों पर अधिकार कर लिया।

अब्दुल्ला और अबुलफ़ज़ल दोनों यह कहना चाहते है कि हेमचन्द्र ने किसी अनुचित विधि से शासन की सारी शक्तियाँ सुल्तान आदिलशाह से छीन ली। उन इतिहासकारों को समझना

चाहिये था कि मध्ययुगीन राजनीति में सत्ता का स्वामी वही था जिसमें उसे प्राप्त करने का बल और सम्भालने का सामर्थ्य होता था। राजा और प्रधानमन्त्री दोनों में से जो अधिक चुस्त, साहसी और परिश्रमी होता था वही वास्तविक सत्ताधारी बन जाया करता था।

इतिहास में ऐसे साम्राज्यों के अनेक उदाहरणा मौजूद हैं जहां योग्य और प्रबल प्रधान मन्त्री ने दुर्बल सुस्त तथा व्यसनी राजा को बर्फ में लगाकर स्वयं शासन किया। दास वंश का सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद सुस्त या व्यसनी तो नहीं था किन्तु फ़कीरों की तरह रहा करता था। वह अपने परिवार के भरणा-पोषण के लिये शाही खज़ाने से एक कौडी भी नहीं लिया करता था। कुरान लिखकर रोज़ी कमाने में दिन भर लगा रहता था। परिणाम-स्वरुप शासन की बागडोर उसके योग्य प्रधान मंत्री बलबन के हाथ में आ गई। इसी तरह मराठों का राजा छत्रपति साहूजी एक अयोग्य और अराम-पसंद शासक था। वह सत्रह साल औरंगजेब की कैद में रहकर सिंहासन पर बैठा था। इतनी लम्बी जेल यात्रा से वह सुस्त तथा निर्बल पड़ गया। इसलिये शासन की सारी शक्तियां उसके पेशवा बालाजी विश्वानाथ के हाथ में आ गई और साहूजी नाममात्र का छत्रपति बनकर रह गया। कालान्तर में साहू के उत्तराधिकार इतने सत्ताहीन हो गये कि उन्हें गुज़ारे के लिये पेशवा से भत्ता मिलता था।

हेमचन्द्र का स्वामी सुल्तान आदिलशाह सूर एक इन्द्रिय परायण, साहसहीन, मूढ़मति और फ़िरोजशाह की हत्या से कलंकित शासक था। सुरा-संगीत में व्यस्त उसके पास प्रशासनिक

कार्यों के लिये समय नहीं था। अतएव उसे शासन-भार सम्भालने के लिये किसी बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न और निष्ठावान सहायक की ओर देखना पड़ा। ऐसा सहायक उसके सामने हेमचन्द्र को छोड़कर और कौन हो सकता था। इसलिये फ़ारसी इतिहासकारों का यह कहना ग़लत है कि हेमचन्द्र ने शासनीय शक्तियां हथियाने के लिये किसी 'अनुचित' विधि का प्रयोग किया। तथ्य यह है कि अयोग्य सुल्तान की शासन के प्रति उदासीनता एवं अरुचि से उत्पन्न परिस्थियों के कारण हेमचन्द्र सल्तनत में एक प्रभावशाली प्रधान मन्त्री बन गया।

आगे की घटनाओं से भी यह स्पष्ट है कि उसने अधिनायक की तरह व्यवहार नहीं किया। आदिलशाह भी सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद और छत्रपति साहू की तरह निष्क्रिय नहीं रहा हेमचन्द्र की सलाह से वह सामरिक नीतियां निर्धारित करता था, सैनिक योजनायें बनाता था। स्वतन्त्र रूप में भी वह आदेश जारी करता था।

सूर सल्तनत का विघटन

सुल्तान आदिलशाह को शासन करते हुये अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ था कि सूर सल्तनत का तेज़ी से विघटन शुरु हो गया। न केवल सूर वंश के सदस्य, बल्कि सभी अफ़गान लोग सुल्तान बनने के स्वप्न देखने लगे।

सल्तनत का विघटन शाही परिवार से शुरु हुआ। शेरशाह के भाई निज़ाम खाँ के दामाद इब्राहिमखां सूर और सिकन्दर

खाँ सूर ने सिंहासन के दावेदार बनकर विद्रोह का मार्ग अपना लिया। परिणाम-स्वरुप इन दो विद्रोहियों तथा आदिलशाह के मध्य दो वर्ष तक गृह-युद्धों का ऐसा क्रम चला कि सूर सल्तनत का नामोनिशान मिट गया।

सल्तनत के टुकड़े करने में पहला प्रहार इब्राहीमखाँ सूर ने किया। उसके किसी षड़यन्त्र के कारण सुल्तान आदिलशाह उसे बन्दी बनाना चाहता था। परन्तु इब्राहीम को सुल्तान के इरादे का पता लग गया। उसने तुरन्त अपना धन-सामान इकठ्ठा किया और अपने सहयोगियों के साथ ग्वालियर से निकलकर बयाना भाग गया जहाँ उसके पिता गाज़ीखाँ सूर की जागीर थी।

सुल्तान ने विद्रोही इब्राहीम का पीछा करने के लिये एक पुराने सेनानायक ईसाखाँ नियाज़ी के सचालन में सेना भेजी। परन्तु शाही सेना हार कर लौट आई। इस सफ़लता से इब्राहीम का साहस बढ़ गया कि उसने आगरा पर अधिकार कर लिया।

विद्रोहियों की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर सुल्तान ने पुराने षड़यंत्रकारी नसीबखाँ और उल्लादादखाँ को ग्वालियर की काल-कोठरी से बाहर निकाला. उनकी बेड़ियां काटकर उन्हें कवच पहनाये और इब्राहीम के विरुद्ध उनकी अध्यक्षता में सेना भेज दी। वे दोनों भी सेना के साथ विद्रोहियों से जा मिले।

इन सरदारों के साथ मिलने से विद्रोहियों की शक्ति में भारी वृद्धि हुई और इब्राहीम ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। उसने 'सुल्तान इब्राहीम शाह सूर' की उपाधि धारण की और सिक्के जारी कर दिये।

दिल्ली की खबरों से सुल्तान आदिलशाह अधीर हो उठा।

अब उसने विद्रोह-दमन के प्रयास छोड़ दिये और इब्राहीम के साथ समझौता करने का निर्णय लिया। उसने इब्राहीम के पास शाही दूत भेजे और यह कहलवाया कि यदि वह विद्रोह का मार्ग त्याग दे तो उसके साथ उसकी प्रतिष्ठा के अनुसार व्यवहार किया जायेगा।

इब्राहीमखाँ ने कूटनीतिक चाल से दूत को कहा कि वह सुल्तान से विद्रोह करके पछता रहा है और क्षमा याचना चाहता है, यदि सुल्तान अपने दो सरदार रायहसैन जलवानी और बहादुर खाँ सरवानी को सद्व्यवहार का यकीन दिलाये तो सेवक हुजूर की खिदमत में हाज़िर होने का सौभाग्य प्राप्त करेगा।

आदिलशाह उसकी चाटुकारिता के जाल में फंस गया और वांछित सरदारों को भेज दिया। चतुर इब्राहीम ने इन सरदारों को भी अपनी ओर मोड़ लिया। इस विश्वासघात से सुल्तान इतना घबरा गया उसे राजधानी पर भी खतरे के बादल नज़र आने लगे अतः ग्वालियर छोड़कर उसने चुनार में वास ले लिया।

यह आश्चर्य की बात है कि सुल्तान आदिलशाह और विद्रोही इब्राहीम खाँ के मध्य इस सारे घटनाचक्र में हेमचन्द्र कहीं दिखाई नहीं देता। वह सल्तनत का प्रधान मन्त्री था और मुख्य सेनापति भी। तब भी अहमद यादगार, अबुलफ़ज़ल, बदायूंनी, निजामुद्दीन, अब्दुल्ला आदि किसी भी इतिहासकार ने उसका कोई ज़िक्र नहीं किया। ये फ़ारसी इतिहासविज्ञ यह कहते हुये तो नहीं थके थे कि हेमू अपनी दूरदर्शिता से सूर-राज्य में सर्वेसर्वा बन गया और अदली कोई आदेश नहीं दे सकता था। परन्तु वे इतिहासकार यहाँ कतई चुप रहे।

हेमचन्द्र ने जुनैदखाँ के विरुद्ध अपना शौर्य दिखाया था और ताजखाँ किरानी को बार-बार हरा कर उसने अपनी सामरिक प्रतिभा का परिचय दिया था। तब इब्राहीम के विरुद्ध सैन्य-संचालन उसे क्यों नहीं सौंपा गया? वह सुल्तान का प्रमुख सलाहकार था। तब नसीबखाँ तथा अलादादखाँ को बन्दीगृह से निकालकर उन्हें सेनाध्यक्ष नियुक्त करने में क्या प्रधानमन्त्री हेमचन्द्र से सलाह की गई? बिद्रोहियों के साथ सन्धि वर्ता के लिये रायहुसैन जलवानी और बहादुरखाँसरवानी को भेजने में क्या 'सर्वेसर्वा हेमचन्द्र से पूछा गया? इतिहास में इन प्रश्नों के उत्तर का अभाव उन इतिहासकारों के दिमाग़ का दिवालियापन हैं।

सिहासन का दूसरा प्रबल दावेदार सिकन्दर खाँ सूर था। इब्रहीम खां की तरह वह भी शेरशाह के चचेरे भाई का पुत्र और सुल्तान आदिलशाह का छोटा बहनोई था। शेरशाही युग से वह पंजाब में किसी ऊँचे पद पर था, किन्तु सल्तनत की प्रतिदिन बदलती हुई राजनीति में सक्रिय रहने के लिये प्रायः ग्वालियर मैं रहा करता था।

सिकन्दर की कुछ संशय-जनक गतिविधियों से सुल्तान ने यह अनुमान लगा लिया कि वह भी इब्राहीम खाँ की तरह किसी समय उससे विद्रोही करेगा। इसलिये उसने सिकन्दर खाँ को ठिकाने लगाने की गुप्त योजना बना ली। सिकन्दर की पत्नी राजमहल में आया-जाया करती थी। उसे आदिलशाह की एक पासबान से उसकी योजना का पता लग गया। सिकन्दर चौकस हो गया और एक दिन जब सुल्तान शराब के नशे में मदहोश पड़ा था, वह अपने परिवार तथा सहचारियों को साथ लेकर ग्वालियर से

निकल भागा। इस समय तक ग्वालियर से लेकर उत्तर में दिल्ली पंजाब का सारा प्रदेश आदिलशाह के हाथ से निकल चुका था। इसलिये विद्रोही सिकन्दर खाँ निर्बाध दिल्ली में इब्राहीम के पास पहुंच गया। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों ने पहले से सांठ-गांठ कर रखी थी। दोनों साढ़ू बड़े उल्लास से मिले और सूर-सल्तनत के बटवारे पर सन्धि की वार्ता शुरु हुई। सिकन्दर ने इब्राहीम को सुझाव दिया कि उसे पंजाब दे दिया जाये, जिसके बदले में वह आदिलशाह के विरुद्ध युद्धों में इब्राहीम को हर सम्भव सहयोग देगा। परन्तु इब्राहीम ने उसका यह सुझाव अस्वीकार कर दिया।

सिकन्दरखाँ के पास अब युद्ध के सिवा दूसरा चारा नहीं था। दोनों तरफ़ के सैनिक रणक्षेत्र में उतर कर व्यूह-बद्ध हो गये' यह युद्ध आगरा के पास फ़र्रा के स्थान पर हुआ। युद्ध से पहले सिकन्दर ने इब्रहीम से संधि का एक प्रयत्न और किया, किन्तु दम्भी इब्राहीम ने समझौता बेकार समझा और रणभेरी बजा दी। सिकन्दर के कुशल सैन्य-संचालन के कारण इब्राहीम हार गया। रणक्षेत्र से बच निकल कर उसने सम्भल में शरण ली।

विजयी सिकन्दर ने आगरा से गढ़ रोहतास तक के प्रदेशों पर अधिकार करके दिल्ली में राज्याभिषेक किया और 'सुल्तान सिकन्दरशाह' की उपाधि से सिंहासन पर बैठा। सिक्के जारी किये। खुतबा उसके नाम का पढ़ा गया। इस तरह सूर सल्तनत का विघटन हुआ।

डा० रामप्रसाद त्रिपाठी के अनुसार--'अफ़गान साम्राज्य पांच सल्तनतों में बंट गया। सिकन्दर शाह पंजाब का स्वामी हुआ, इब्राहीमशाह के अधिकार में सम्भल और दोआब रहा,

आदिलशाह का अधिकार चुनार से बिहार तक सीमित हो गया, मालवा बाजबहादुर का हुआ और मुहम्मदखाँ बँगाल का सुल्तान बना। प्रत्येक की तमन्ना पूरी सल्तनत पर हकूमत करने की थी। सिकन्दर ने दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर लिया और मुहम्मदखाँ बंगाल की सीमा पार करके सुल्तान आदिलशाह पर आक्रमण करने की फ़िक्र में था।'

हेमचन्द्र की गौरवपूर्ण विजयें

सिकन्दरखाँ सूर ने पँजाब पर अपना अधिकार अभी सुदृढ़ नहीं किया था कि हुमांयू गढ़ रोहतास विजय करके लाहौर में आ धमका। अतः सिकन्दर ने दिल्ली और पंजाब की रक्षा के लिए सैनिक तैयारियां शुरु कर दी।

हुमांयू के भारत आगमन की ख़बर से सुल्तान आदिलशाह भी चौकन्ना हो गया। उसने भारी तोपें, ५०० हाथी और एक बड़ी सेना के साथ सेनापति हेमचन्द्र को दिल्ली पर चढ़ाई करने का आदेश दिया।

हेमचन्द्र दिल्ली की ओर बढ़ा। परन्तु मन्ज़िल पर पहुँचने से पहले ही उसे मार्ग में विद्रोही इब्राहीमखाँ से निरन्तर युद्धों में उलझना पड़ गया।

इब्राहीम खाँ फ़र्रा में सिकन्दर से हारकर सम्भल में भाग आया था। यहाँ उसने अपनी शक्ति पुनः संगठित कर ली और वह दिल्ली पर हाथ मारने की योजना बनाने लगा।

इसलिये उसने दिल्ली की ओर बढ़ते हुये हेमचन्द्र का मार्ग

रोकने की चेष्टा की। हेमचन्द्र ने भी यही उचित समझा कि पहले इब्राहीम से निपट लिया जाये। अतः हेमचन्द्र द्रुतगति से इब्राहीम की ओर मुड़ा और कालपी के समीप उस पर झपट पड़ा। दोनों सेनाओं की भीषण भिड़न्त में हेमचन्द्र ने वैरी के पांव उखाड़ दिये और इब्राहीम तथा उसके बचे हुये सैनिक युद्ध भूमि से भाग खड़े हुये। शाही सैनिकों ने दूर तक पीछा करके बहुत से शत्रु सैनिक आहत कर दिये। इब्राहीम ने भाग कर बयाना-दुर्ग में शरण ली।

कालपी में इब्राहीम को हराकर अब हेमचन्द्र द्विधा में था कि दिल्ली की ओर बढ़ा जाये या इब्राहीम को आमूल नष्ट करने के लिये बयाना का घेरा डाला जाए। चूंकि उसे सन्देह था कि शाही सेना के दिल्ली पहुंचने पर इब्राहीमखाँ कोई भी संकट खड़ा कर सकता है। रसद पंक्तियाँ भी काटी जा सकती हैं और निर्बल सुल्तान अकेला उसका सामना करने में असमर्थ है। इन सम्भावनाओं के अतिरिक्त बंगाल का शासक मुहम्मदशाह सूर इस समय पश्चिम की ओर अपने राज्य को बढ़ाने की योजनायें बना चुका था और इब्राहीम खाँ के साथ, आदिलशाह के विरुद्ध, समझौते की सम्भावना थी। इन कारणों से हेमचन्द्र ने सर्वप्रथम इब्राहीम खाँ को जड़ से उखाड़ने का निर्णय लिया।

हेमचन्द्र बड़ी तेज़ गति से बयाना पहुंचा और दुर्ग पर घेरा डाल दिया। दूरमार तोपों के गोलों से क़िले की प्राचीरों पर भीषण प्रहार होने लगे। इब्राहीम ने भी सुरक्षात्मक कार्यवाही की। उसने क़िले की बुर्जों पर तोपें रख दी और शाही सैनिकों पर गोले बरसाने शुरु कर दिये। गोलों की मार से दूर हटकर हेमचंद्र ने सुरँगे बिछाने का आदेश दिया ताकि उनमें बारुद भरकर दुर्ग

की प्राचीरें उड़ा दी जायें । परन्तु लगातार वर्षा के कारण इस कार्य में कोई भी प्रगति न हो सकी । हेमचन्द्र को घेरा डाले तीन मास गुज़र गये किन्तु इब्राहीम ने आत्म-सम्पर्ण नहीं किया । दर-असल इब्राहीम को बाहर से रसद मिल रही थी, मुल्ला बदायूंनी लिखते हैं—' गाज़ीखाँ सूर इब्राहीम का पिता था । वह इस समय हिण्डौन में था । वहां से वह बयाना के पश्चिम की ओर की पहाड़ियों के मार्ग से इस दुर्ग में सामान भेजा करता था ।' जैसे ही हेमचन्द्र को रसद के गुप्त रास्ते का पता लगा, उसने घेरा इतना दृढ़ कर दिया कि एक भी छिद्र ऐसा नहीं रहा जहाँ से खाद्य सामग्री दुर्ग में जा सके । इसके परिणाम-स्वरूप दुर्ग की रक्षक सेना कुछ ही दिनों में भूख से व्याकुल हो उठी । विवशता की हालत में इब्राहीम ने दुर्ग से बाहर आकर शाही सेना से लोहा लेने का निश्चय किया । परन्तु घेरे की कठोरता के कारण यह तभी सम्भव हो सकता था जब शाही सेना को किसी अन्य सेना से उलझा दिया जाये । इस युक्ति के अनुसार इब्राहीम के पिता ने हिण्डौन की सहायक टुकड़ी साथ ली और बयाना पहुंचकर हेमचन्द्र के सैनिक शिविर पर आक्रमण कर दिया, जिसके कारण शाही सैनिकों को घेरे से हटकर एक स्थान पर आना पड़ा । तब इब्राहीम ने क़िले के फाटक खोल दिये और सेना बाहर निकाल ली । इस समय यदि हेमचन्द्र चाहता तो बयाना के दुर्ग पर आसानी से अधिकार कर सकता था, किन्तु उसने युद्ध के लिये इब्राहीम को ललकारा । आगरा से लगभग पन्द्रह मील इधर खनवाह के ऐतिहासिक मैदान में दोनों सेनाओं में लड़ाई हुई । यहाँ भी हेमचन्द्र ने इब्राहीम को करारी हार दी । रणक्षेत्र से

निकल कर वह पुनः बयाना के दुर्ग में भाग गया ।

हेमचन्द्र ने भगोड़ो का पीछा किया और एक बार पुनः बयाना का घेरा डाल दिया । ऐसा प्रतीत होता है कि हेमचन्द्र इस कांटे को सदा के लिये निकालने पर दृढ़ संकल्प था ।

हेमचन्द्र ने अपने तोपचियों को आदेश दिया कि लगातार गोले बरसा कर दुर्ग की दीवारें विध्वंस कर दी जाएं । कहते हैं कि इब्राहीम ने कुछ शर्तों के साथ सन्धि का सुझाव दिया, किन्तु हेमचन्द्र चाहता था कि वैरी बिना शर्त के आत्म-सम्पर्ण करे । इब्राहीम सीधे मार्ग पर नहीं आया । शाही सेना ने दुर्ग विजय करने के में हर साधन का प्रयोग किया और अन्त में सुरंगे खोद ली गई जिनमें बारूद भरा जा रहा था । परन्तु इब्राहीम खाँ के ग्रह अच्छे थे कि इसी समय एक ऐसी घटना हुई जिसके कारण हेमचन्द्र को दुर्ग से घेरा उठाना पड़ा और इब्रहीम शाही बन्दी बनने से बाल बाल बच गया ।

घटना यह हुई कि बंगाल के महत्वाकांक्षी शासक मुहम्मद शाह ने सूर-परिवार के इस गृह-युद्ध से लाभ उठाना चाहा और सुल्तान आदिलशाह के प्रदेशों पर आक्रमण करने शुरु कर दिये । जौनपुर के परगनों में लूटमार करता हुआ वह कालपी और आगरा तक बढ़ आया । छप्परघाट के स्थान पर आदिलशाह ने उसे रोक लिया । परन्तु हेमचन्द्र की अनुपस्थिति में निर्बल सुल्तान बंगाल की विशाल सेना का सामना करने में सर्मथ नहीं था । अतः उसने हेमचन्द्र को बुलाने के निमित्त बयना के शाही शिविर में दूत भेजा । हेमचन्द्र के नाम सुल्तान का सन्देश था कि वह इब्राहीम खां के विरुद्ध कार्यवाही स्थगित करदे और मुहम्मद

शाह से निपटने के लिये अपनी समस्त सेना तथा तोपखाने के साथ तुरन्त सुल्तान के पास पहुंचे।

सुल्तान का सन्देश पाकर हेमचन्द्र स्तब्ध रह गया। बयाना के पतन में अब अधिक देर नहीं थी। यदि उसे दो दिन का समय और मिल गया होता तो वह इस वैरी को सदा के लिये समाप्त कर देता। परन्तु इब्राहिम भाग्यशाली था कि शाही आदेश का पालन करते हुये हेमचन्द्र को घेरा उठाकर वापस जाना पड़ा।

हेमचन्द्र के वापस लौट जाने पर इब्राहिम ने सुख की सांस ली। ऐसी घड़ी में घेरा उठाने से वह हैरान हुआ और हेमचन्द्र की इस नीति का रहस्य न समझ सका। सम्भवत: उसने अनुमान लगाया कि हेमचन्द्र और उसके सनिक किसी विशेष विपत्ति में हैं जिसके कारण वे हाथ आई सफ़लता को इस तरह छोड़ कर जा रहे है। अत: अनुमानित विपत्ति से लाभ उठाने की चाह में इब्राहिम ने अपनी सेना दुर्ग स बाहर निकाली और तेज़ी से हेमचन्द्र का पीछा करने लगा। मंडावर में उसने शाही सेना के पिछले दस्तों पर आक्रमण कर दिया शाही सैनिक रुके और पीछे मुड़कर इ हिम की सेना पर भेड़ियों की तरह टूट पड़े। उसके बहुत से सैनिक काट दिये गये। इब्राहिम इस बार भी हाथ न आया, वह जान बचाने में सफ़ल हो गया। हेमचन्द्र के पास इतना समय नहीं था कि वह भगोड़ों का दूर तक पिछा करता। वह तेज़ी से अपने मार्ग पर बढ़ता रहा और ठीक समय पर सुल्तान की सहायता को जा पहुंचा।

मण्डावर में हेमचन्द्र से मार खा कर इब्राहिम मेवात में अलवर भाग गया। यहां उसे अलवर के हाकिम हाज़ी खां से

सहायता मिल गयी और उसने हेमचन्द्र के विरुद्ध संघर्ष जारी रखने के लिये शक्ति पुन: संचय कर ली। इस नये ख़तरे से निपटने के लिये हेमचन्द्र ने अपने भतीजे महिपाल को नियुक्त किया। उसे कुछ सेना देकर वह स्वंय सुल्तान से जा मिला। महिपाल ने अलवर के युद्ध में इब्राहीम को हराकर उसे पूर्व की ओर भागने पर विवश कर दिया। महिपाल से पराजित होकर इब्राहीम अब अपने पिता गाज़ीखाँ के पास बयाना के दुर्ग में नहीं गया। वह लगातार चार बार कालपी, खनवाह, मण्डावर और अलवर के युद्धों में 'बनियों' से बुरी तरह हार चुका था, इसलिये पिता को मुंह दिखाने में उसे शर्म आ रही थी।

भटकता हुआ इब्राहीम भत्त के प्रदेश में जा पहुंचा। यहां किसी विशेष कारण से पटना के राजा रामचन्द्र के साथ उसका युद्ध हुआ। अभागा इब्राहीम इस युद्ध में भी हार गया। तदन्तर वह मियाना जाति के लोगों के साथ मिल गया और मालवा के राजा बाज़बहादुर के विरुद्ध युद्ध में उलझा रहा। परन्तु इब्राहीम के नेतृत्व में मियाना लोगों को सफ़लता न मिल सकी। अब वह मालवा से उड़ीसा चला गया। वह यहाँ लगभग बारह वर्ष रहा। १५६७ में सुलेमान किरानी ने धोखे से उसका वध कर दिया।

इधर हेमचन्द्र यथाशीघ्र छप्परघाट के सैनिक शिविर में सुल्तान आदिलशाह के पास पहुँच गया। यह स्थान कालपी से लगभग बीस मील दूर यमुना के किनारे पर है। यहां शाही सेना और बगाली सेना में मुठभेड़ हो रही थी। शाही सेना की हालत पतली थी। हेमचन्द्र की कुमुक के पहुंचने पर शाही सेना में उत्साह की लहर दौड़ गई और दोनों दल सन्तुलन में आ गये।

हैमचन्द्र ने अपनी थकी हुई सेना को तुरन्त रणक्षेत्र में उतरने की जल्दी नही की। नदी पार करने की बजाये वह शिविर में रूका रहा और दिन ढलने की प्रतीक्षा करने लगा। रात हुई और ज्योंहि सन्नाटा तेज़ हुआ उसने अपने हाथियों तथा घुड़सवारों को नदी में उतारा और दूसरे किनारे पर पहुंच गया। वह चुपचाप आगे बढ़ा और यकायक शत्रु सेना पर धावा बोल दिया। बंगाली सैनिक उखड़ कर बिखरने लगे। मुहम्मद ने अपने को भीषण खतरे में घिरा पाया। उसने निकल कर भागने का प्रयास किया किन्तु शाही सैनिकों के भालों-तलवारों के घेरे से मुक्त न हो सका और मारा गया। शत्रु दल के लगभग पाँच सौ हाथी, तोपें, हज़ारों घोड़े तथा सामान-सम्पत्ति और सजावट की वस्तुएं शाही सेना के हाथ लगी। यह विजय सम्पूर्ण थी। हेमचन्द की बाईस विजयों में यह सबसे अधिक सुन्दर, शीघ्र और रोमांचकारी विजय मानी जाती है। छप्परघाट के इस युद्ध को कुछेक इतिहासों में 'चरकता की लड़ाई' भी कहा जाता है।

इस युद्ध का अनोखा वर्णन प्रो० मुहम्मद हुसैन आज़ाद ने अपने ग्रंथ 'दरबार-ए-अकबरी' में किया। वह लिखते हैं –'महमूद कोडिय नाम के एक अफ़गान के साथ अदली का मुकाबला था। कालपी से पन्द्रह कोस दूर चरकता के स्थान पर दोनों सेनायें आमने सामने पड़ी थी। दोनों के बीच में यमुना नदी थी। कौडिया के पास विशालकाय हाथी और असीमित युद्ध-सामग्री थी। एक रात हीमू पुच्छल तारे की तरह कहीं से उठा और गुमसुम उस पर जा पड़ा। आश्चर्य की बात तो यह है कि उसकी गज-पंक्तियाँ यमुना पार कर गई और किसी को पता न लगा,

हाथ हिलाने का अवकाश भी न दिया। बंगालियों की यह दशा हुई की सिर को पाँव की सुध, न जूती को पगडी की। भागे, डूबे, काट दिये गये। कौडिया बेचारा तो ऐसा गया कि फिर उसका पता ही न लगा।' छप्परघाट का युद्धनिर्णायक सिद्ध हुआ। इसके फलस्वरुप सुल्तान आदिलशाह ने बंगाल पर अधिकार कर लिया।

सल्तनत के आन्तरिक शत्रुओं के विरुद्ध हेमचन्द का यह अन्तिम सफ़ल अभियान था। इससे पूर्व ताजखाँ के दमन से उपद्रवी किरानियों का खतरा लगभग समाप्त हो चुका था। अलवर की लड़ाई के बाद इब्राहीम खाँ भी विद्रोह का मार्ग छोड़ कर भटकता हुआ उड़ीसा चला गया था। इस प्रकार आन्तरिक बाधाओं से निश्चिन्त होकर हेमचन्द्र अब विदेशी मुग़लों से लोहा लेने के लिये तैयार था।

हुमायूं का पुनः भारत आगमन

शेरशाह सूर ने १५४० ई०में हुमायू को भारत से बहार निकाल दिया था। परन्तु शेरशाह की शीघ्र मृत्यु सूर सल्तनत के विघटन तथा राजपूतों की निष्क्रियता के कारण मुग़लों को पुनः भारत में आने का अवसर मिल गया और हुमांयू ने अपने खोये हुये दिल्ली सिंहासन को पुनः प्राप्त कर लिया। इन कारणों के बावजूद भी हुमांयू को भारत में आने से रोका जा सकता था, यदि सिकन्दरखाँ और हेमचन्द इकट्ठे होकर उसके विरुद्ध सामरिक प्रयास करते। परन्तु दुर्भाग्य से हेमचन्द्र को सूर सल्तनत के विद्रोहियों से उलझना पड़ गया, इसलिये अकेला सिकन्दर

मुग़लों को रोकने में सफ़ल न हो सका।

सुल्तान आदिलशाह को संगीत-शालाओं तथा हेमचन्द्र को बिद्रोहियों के सामने सैनिक शिविरों में देखकर भारत के देशद्रोही भी विदेशियों को बुलाने में सक्रिय हो उठे। काबुल के दरबार में एक सौदागर हाजी पराँचा हुमाँयू के सानने हाज़िर हुआ उसने भारत से मुल्ला सुल्तानपुरी के भेजे हुये 'तोफ़े' भेंट किये। ये दो वस्तुएं थीं–एक जोड़ी मौजा और एक चाबुक। इन तोफ़ों से तात्पर्य यह था–'पैरों में मौजे पहनो और चाबुक हाथ में ले घोड़े पर सवार होकर हिन्दुस्तान चले आओ, मैदान साफ़ है।' इन सांकेतिक 'तोफ़ों' से हुमाँयू को यह जानकर खुशी हुई कि भारत में उसके शुभचिन्तक मौजूद हैं।

हुमाँयू के पास शक्तिशाली सेना थी। इसलिये खोई हुई राजलक्ष्मी की पुनर्प्राप्ती हेतु उसने १२ नवम्बर १५५४ को काबुल से कूच किया। पेशावर के दुर्ग की मरम्मत करवाई। मौहूर्तिकों द्वारा बताई गई तिथि को उसने सिन्धु नदी पार की और लाहौर की ओर बढ़ा। मार्ग में शेरशाह का बनवाया हुआ गढ़ रोहतास तातारखाँ काँशी के सुपुर्द था। वह घबरा गया। एतएव उसने मुग़लों को रोकने की कोई चेष्टा नहीं की और गढ़ छोड़कर सिकन्दरखाँ के पास भाग गया। हुमाँयू ने आगे कूच किया। २४ फ़रवरी १५५५ ई० को वह निर्बाध लौहार पहुंच गय।

यह वही लौहार था जहाँ पन्द्रह साल पहले १५४० ई० में शेरशाह द्वार खदेडे हुये दो लाख मुग़ल इकट्ठे हुये थे। हुमाँयू के सन्धि-प्रस्ताव को शेरशाह द्वार ठुकराये जाने की खबर जिस दिन लाहौर पहुंची- तब यह 'मुग़ल शर्णार्थियों का शिविर' लाहौर

शोक-संतप्त हो उठा था। प्रत्येक की आँखों में आसू थे, मुग़ल महिलायें जार २ रुदन कर रही थी। 'हुमाँयू नामा' की लेखिका गुलबदन ने कहा है–'यह क्यामत के दिन जैसा था।' भाग्य की बिडम्बना देखिए, उसी लाहौर में अब हुमाँयू ने बड़ी शान से प्रवेश किया, जशन हुये दावतें की गई आतिशबाज़ियाँ छोडी गई।

कई दिन तक खुशियाँ मनाने के बाद मुग़ल सेना ने आगे चलकर जालन्धर के पास पड़ाव डाला। बढ़ते हुये मुग़लों को रोकने के लिये अब दिल्ली-पंजाब के 'सुल्तान' सिकन्दर खाँ ने सैनिक तैयारियाँ शुरु की। उसने अपने मुख्य सेनापति तातारखाँ काँशी के नेतृत्व में पचास हज़ार घुड़सवारों की सेना आगे भेजी। मछीवाड़ा के स्थान पर मुग़लों से युद्ध हुआ, अफ़गान हार गये।

मछीवाड़ा की हार से सिकन्दर हताश नहीं, हुआ, उसने बढ़ते हुये मुग़लों को रोकने के लिये सत्तर हज़ार सेना के साथ सरहिन्द की ओर कूच किया। हुमाँयू भी मैदान में उतर आया। युद्ध के प्रारम्भ में अफ़गानों ने मुग़लों पर इतने तेज़ प्रहार किये कि उन्हें अपनी सुरक्षित रेखा के पीछे हटना पड़ा। हुमाँयु ने अपनी सेना के दोनों बाजुओं को आदेश दिया कि वे घूम कर शत्रु के पीछे जायें और स्वयं सामने से प्रथम प्रहार करने लगा, फल-स्वरूप अफ़गान उखड़ गये और भागने लगे। मुग़लों ने दूर तक उनका पीछा किया। हज़ारों अफ़गान मारे गये। दो सौ पचास हाथी, तीन सौ घोड़े, खज़ाना और सोने चांदी के बतन मुग़लें के हाथ लगे। सिकन्दर सूर ने शिवालिक की पहाड़ियों में शरण ली। हुमाँयू और बैरमखाँ ने समझा होगा कि पन्द्रह साल पुरानी हार की उधार उतार दी है। इसलिये चौंसा तथा बिलग्राम की मार

की भड़ांस निकालने के लिये अफ़गानों की खोपाड़ियों का मीनार बनवाया गया जिसे 'सर-ए-मन्ज़िल' कहते हैं। यह चंगेज़ खाँ का रिवाज था।

मछीवाड़ा ने हुमाँयू को दिल्ली विजय की चाबी दी और सरहिन्द ने दिल्ली का द्वार खोल दिया। मुग़ल सेना निर्बाध आगे बढ़ती चली। पानीपत ने भी रास्ता छोड़ दिया। २३ जोलाई १५५५ ई० को हुमाँयू ने दिल्ली में प्रवेश किया और अपने पिता के सिंहासन पर दूसरी बार विराजमान हुआ।

जिस समय इस मुग़ल बादशाह को मारपीट कर भारत से बाहर निकाला था, तब कोई सोच भी नहीं सकता था कि यह अफ़ीमची दोबारा यहाँ आ जायेगा। भारत के समूचे इतिहास में सम्भवतः ऐसा कोई भी शासक नहीं है जिसने अपनी खोई हुई सल्तनत इस तरह दोबारा प्राप्त की। कोई उसे अफ़ीमची, सनकी सुस्त, रंगरलियों में मस्त, शत्रुओं के प्रति क्षमाशील, कुछ भी कहे, किन्तु यह उसकी महानता थी कि उसने मुग़लों के धूल-धूसरित ताज को घोर विपत्तियों-वेदनाओं से पोंछ कर अपने सिर पर रख लिया।

श्री राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है–'दिल्ली में हेमचन्द्र के न रहने पर वह अरिक्षत हो गई और हुमाँयू ने आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया।' निःसन्देह यदि आदिल, इब्राहीम तथा सिकन्दर इकट्ठे रहते और अफ़गानियों-राजपूतों की संगठित शक्ति सेनापति हेमचन्द्र के नेतृत्व में कहीं भी मुग़लों का सामना करती तो भारत का इतिहास दूसरा ही होता।

दिल्ली सिंहासन पर दोबारा बैठे हुमांयू को अभी एक वर्ष

भी पूरा नहीं हुआ था कि भाग्य ने दूसरा निर्णय ले लिया। एक दिन वह दीनेपनाह में पुस्तकालय की छत पर ज्यौतिषियों से बात चीत कर रहा था। तारे ताकते ताकते उसे देर हो गई। वह नीचे उतरने लगा कि चोगे में पांव फंस गया और बैत फ़िसल गई। वह लुढ़क कर नीचे गिरा। दो दिन बेहोशी में रहने के बाद २६ जनवरी १५५६ ई० को उसकी मृत्यु हो गई। इस समय उसका पुत्र अकबर पंजाब में था। मुग़ल अमीरों-वज़ीरों को यह सन्देह हुआ कि उत्तराधिकारी की घोषणा किये बिना बादशाह की मृत्यु की ख़बर फैलने से राज्य में गड़बड़ी मच सकती है। अतः उन्होने मृत्यु की ख़बर छिपाकर रखी। इस काम के लिये वे एक व्यक्ति मुल्ला बेकसी को लाये जिसका चेहरा-मोहरा हुमांयू से मिलता-जुलता था। अमीर-वज़ीर उसे शाही लिबास पहनाकर हर रोज़ प्रातः काल महल के झरोखे में बिठा दिया करते थे। सत्रह दिन तक मुल्ला बकसी झरोखा-दर्शन देकर लोगो का उल्लू बनाते रहे।

अकबर और बैरमखाँ गुरदासपुर जिले में सिकन्दर सूर की टोह में थे कि यहां उन्हें बादशाह की मृत्यु की ख़बर मिली। बैरमखाँ ने दिल्ली पहुंचने में समय नष्ट करना ठीक नहीं समझा, चबूतरा बनाकर अकबर का सिंहासन तैयार किया और उसे बिठाकर तख्त-नशीनी की रस्म पूरी कर दी। उसे 'जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर पादशाह गाज़ी' की उपाधी से 'शहंशाह-ए-हिन्द' घोषित किया गया। दिल्ली में तीन दिन पहले ही १४ फ़रवरी १५५६ ई० को तरदीबेग ने अकबर के नाम का खुतबा पढ़वाया। इस समय अकबर की आयु तेरह वर्ष चार महीने की थी।

अकबर के राज्याभिषेक के बाद जालन्धर में दिल्ली से सन्देश आया कि हेमचन्द्र ने आगरा पर अधिकार कर लिया है और बड़ी तीव्रगति से दिल्ली की ओर बढ़ रहा है।' यदि सैनिक सहायता शीघ्र न पहुँची तो दिल्ली की रक्षा नहीं हो सकेगी। सन्देश के उत्तर में बैरमखाँ ने अपने सहयोगी पीरमुहम्मद शेरवानी को कुछ सेना देकर दिल्ली रवाना किया।

मुग़लों पर ऐतिहासिक विजय

गत सत्रह महीनों में हेमचन्द्र लगभग सत्रह सफ़ल युद्ध लड़ चुका था। सैन्य संचालन में अब वह अनुभवी सेनापति था। इब्राहीम सूर तथा मुहम्मदशाह बंगाली को हटाने के बाद अब उसके सामने आन्तरिक समस्यायें नहीं थी, किन्तु मुग़ल भारत में आ चुके थे और उन्होंने पंजाब से लेकर ग्वालियर तक के प्रदेशों पर प्रभुत्व जमा लिया था। अतः मुग़ल-प्रसार को रोकने के लिये अब उसे विदेशी शत्रु से लोह लेना था। मछीवाड़ा और सरहिन्द के युद्धों से लौटे हुये अफ़गानों से सुनकर उसने मुगलों की प्रबलताओं का अनुमान लगा लिया था जिसके अनुसार उसने शक्ति-संचय करना शुरु कर दिया।

हेमचन्द्र ने नये सैनिक भर्ती किये और उन्हें प्रशिक्षण दिया। विद्रोहियों की हारी-पिटी सेनाओं से निकले हुये अफ़गान इधर उधर घूमते फिर रहे थे उन्हें शाही सेना में दाखिल कर लिया गया। राजपूत, बुन्देले, रौनियर, मेवाती, अहीर आदि तथा अन्य जातियों के लोग भी सेना में लिये गये। दरअसल हेमचन्द्र ने विदेशी आक्रमणकारियों के विरुद्ध एक धर्मनिर्पेक्ष भारतीय सेना

का संगठन किया। उसने गोला-बारूद तथा अस्त्र-शस्त्र तैयार करवाये। फैज़ी सरहिन्दी के अनुसार– 'उसने पुर्तगालियों से भारी तोपें, घड़तालें और शुतरनालें खरीदी। प्राचीन हिन्दू राजाओं की युद्ध-प्रणाली पर उसने एक विशाल गज-वाहिनी का निर्माण किया। ये सभी हाथी सर्वांग कवचधारी थे। प्रत्येक की सूंड पर नेजे-छुरे बंधे हुये थे। अबुल फ़ज़ल के अनुसार –' ये हाथी विभिन्न राज्यों से प्राप्त किये गये थे।' विशेष हाथियों के नाम थे –ग़ालिब जंग, गजभंवर, ज़ोरे बान्यान, फौजेमादर, काली बेग, हवाई आदि। इस गजवाहिनी में ५०० 'सीरा' हाथी भी थे। सीरा नस्ल के हाथी तेज गति तथा सूंड घुमाने में प्रसिद्ध हैं।

हेमचन्द्र सैनिक तैयारियाँ कर रहा था कि उसे हुमाँयू की मृत्यु और अकबर की तख्त-नशीनी की ख़बरें मिली। यह भी पता लगा कि सिकन्दर सूर मुग़लों से पूरी तरह पराजित नहीं हुआ और मानकोट की गढ़-पंक्ति पर अधिकार किये हुये है। ऐसी अनुकूल परिस्थिति को देखकर हेमचन्द ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया।

हुमांयू ने ग्वालियर पर भी अधिकार कर लिया था। अतः हेमचन्द्र ने सर्वप्रथम ग्वालियर पर चढ़ाई की यहाँ का मुग़ल हाकिम अलीकुली खाँ मुग़लों के सर्वोत्तम सेना-नायकों में गिना जाता था। अफ़गान सेना की चढ़ाई से वह हताश नहीं हुआ और दुर्ग में बैठकर रक्षात्मक युद्ध करने में उसने अपमान समझा। हेमचन्द्र का सामना करने के लिये उसने ग्वालियर के दुर्ग से सेना निकाल कर रणक्षेत्र में उतारी। परन्तु अफ़गानों ने प्रथम प्रहार में ही उसे हरा दिया। मुग़ल मैदान छोड़कर भागने लगे। भागते

हुये काटे गये। अफ़गानों ने लूट में भारी युद्ध-सामग्री और सम्पत्ति प्राप्त की जिसमें स्वर्ण वस्तुएं व हीरे-जवाहरात भी थे। हेमचन्द्र ने लूट से प्राप्त सामान सुल्तान के पास भजवा दिया। अपने सेनापति की सफ़लता पर सुल्तान ने वधाई पत्र के साथ हाथी तथा रत्न-जड़ित खिल्लत भेजी।

ग्वालियर से भागकर अलीकुली खाँ दिल्ली नहीं गया। उसने सम्भल की सरकार के अफ़गान हाकिम शादीखाँ के विरुध प्रयाण किया।

ग्वालियर के दुर्ग पर विजय-ध्वज लहरा कर हेमचन्द्र की सेना आगे बढ़ी। इटावा के हाकिम कियाखाँ गंग ने अफ़गानों का सामना करने का साहस जुटाया, किन्तु शीघ्र ही हथियार फैंक कर भाग खड़ा हुआ। आगरा में उसे सिकन्दर उज़बेग ने अपनी सहायता के लिये रोक लिया।

कालपी का मुग़ल हाकिम अब्दुल्लखाँ उज़बेग भी मुग़लों का एक ख्याति प्राप्त सरदार था। परन्तु हेमचन्द्र से वह इतना आतंकित हो गया कि अफ़गान सेना के आने से पहले ही दुर्ग छोड़ कर दिल्ली की ओर प्रस्थान कर गया।

इटावा और कालपी पर प्रभुत्व जमाने के बाद हेमचन्द्र ने अपनी थकी हुई सेना को दम नहीं लेने दिया और बड़ी तीव्रगति के साथ उत्तर की ओर कूच करके आगरा पर चढ़ाई कर दी।

आगरा का सूबेदार सिकन्दरखाँ उज़बेग भी अलीकुलीखाँ शेरवानी की तरह एक मंजा हुआ, रणकुशल और शूरवीर सेनापति था। वह शाही परिवार से था और हुमांयू का पुराना सहयोगी भी। परन्तु इटावा तथा कालपी की खबरें सुनकर वह

घबरा गया। इसके अलावा उसने अफ़गान विद्रोहियों के दमनार्थ हेमचन्द्र की चमत्कारी सफ़लताओं की गाथायें सुन भी रखी थी जिसके कारण उसमें अफ़गानों का सामना करने का साहस न था। जैसे ही हेमचन्द्र आगरा की पूर्वी प्राचीर के निकट आया, सिकन्दर उज़बेग ने दुर्ग खाली कर दिया और वह अपने सहयोगी कियाखाँ गंग तथा अन्य सरदारों के साथ पश्चिमी दरवाजों से निकलकर दिल्ली की ओर भागा। अफ़गानों ने भागते हुये मुग़लों का बड़ी गम्भीरता से पीछा किया। बहुत से मुग़ल मारे गये।

आगरा से सिकन्दर खाँ उज़बेग के पलायन का वर्णन प्रो० मुहम्मद हुसैन आज़ाद ने अपनी अनूठी शैली में इस तरह किया है –'आगरा में अकबर की तरफ से सिकन्दर खाँ हाकिम था। उसके होश दुश्मन के आते-२ उड़ गये। आगरा सरीखा धाम। भाग्यहीन सिकन्दर को देखो कि विना युद्ध किये किला खाली करके भागा। अब हीमू कब थमता था, दबाये चला गया। रास्ते में एक स्थान पर टूटा-दिल सिकन्दर उलट कर मुड़ा, किन्तु कई हज़ार सैनिकों का वध, कैद और नदी में नष्ट करवाया और फिर भाग निकला। हीमू का साहस और अधिक बढ़ गया और तूफ़ान की तरह दिल्ली की और बढ़ चला।'

इस तरह हेमचन्द्र ने राजनीतिक सूझ-बूझ से दिल्ली पर आक्रमण करने से पहले आसपास के प्रदेशों पर अधिकार स्थापित किया। सम्भल और अलवर के प्रदेशों में हेमचन्द्र के सहयोगी, अफ़गान हाकिम क्रमशः शादीखाँ और हाज़ीखाँ संघर्ष कर रहे थे।

भव्य विजयों से उत्साहित अफ़गान सेना दिल्ली पर चढ़ आई, तुग़लकाबाद में शिविर लगाये गये। यह स्थान कुतुब मीनार से

लगभग ५ मील पूर्व में महरौली-कुतुबपुर मार्ग पर स्थित है। कुछ दिन बाद सम्भल से शादीखाँ भी मुग़लों को हराकर आ गया।

इटावा, कालपी, आगरा, कोल आदि प्रदेशों से मुग़ल हाकिम भाग २ कर दिल्ली आने लगे तो राजधानी में हेमचन्द्र का आतंक फैल गया। छोटे-बड़े राज्याधिकारी, सैनिक और जन-साधारण सभी हैरान थे कि अनुभवी सेनानायकों के नेतृत्व तथा यथेप्ट क्षमतावान तोपख़ाने के बावजूद मुग़ल सेनायें इस तरह कैसे हार गई। नाना प्रकार की बातें उड़ने लगी–'हेमचन्द्र अजय है, उसकी सेना के सामने कोई ठहर न सका, वह जादू भी जानता है, उसे पीरों-फ़कीरों से आशीर्वाद मिले हुये हैं, वह दूसरा शेरशाह है जो मुग़लों को हिन्दुस्तान से निकालकर ही दम लेगा।' यह भी सम्भव है कि हेमचन्द्र के गुप्तचरों ने दिल्ली के मुहल्लों-बाज़ारों में अद्भुत अफ़वाहें फैलाई होंगी, ताकि दुर्ग में भयावह वातावरण बनाया जा सके।

दिल्ली के सूबेदार तरदीबेग के सामने भयंकर परिस्थिति पैदा हो गई। धैर्य से काम लेकर उसने आसपास के प्रदेशों के नाम हुक्मनामे लिखे कि आदिलशाह का वकील हेमू दिल्ली पर चढ़ आया है। अतः वे दिल्ली पहुंच जायें। कुछ हाकिम पहले ही भाग आये थे और शेष सूबेदार का हुक्म मिलते ही चले आये। परन्तु सम्भल से अलीकुली खाँ नहीं पहुंचा। वह यमुना तट पर आ गया था। जब उसे मालूम हुआ कि हेमचन्द्र दिल्ली के पास पडाव डाले पड़ा है तो उसने वापस लौट जाने का विचार किया, किन्तु शीघ्र ही युद्ध छिड़ गया जिसके कारण वह वहीं यमुना के बायें किनारे पर खड़ा रहा।

अलीकुली खाँ के अतिरिक्त शेष मुग़ल सरदार दिल्ली के दुर्ग में इकट्ठे हो गये। हेमचन्द्र के ख़तरे को सामने रखकर गोष्ठी शुरु हुई। विचार-विमर्श का विषय था कि अफ़गान सेना के साथ युद्ध किया जाये अथवा कोई अन्य मार्ग अपनाया जाये। सब से पहले अध्यक्ष पद से तरदीबेग ने कहा— 'मेरा विचार है कि दिल्ली छोड़कर सम्राट के पास चले जाने में हमारी भलाई है ताकि जलालुद्दीन का सौभाग्य हमारी रक्षा……'।

तरदीबेग की बात काटकर एक अमीर अबुल मुआली ने कहा— 'इससे कायरता प्रकट होती है, यदि हम दिल्ली छोड़कर भाग जायें तो राज-सिंहासन के सामने क्या मुंह दिखायेंगे।' एक सरदार ने यह सुझाव दिया — 'पंजाब से बादशाह की सेना के आने तक हमें दुर्ग से रक्षात्मक युद्ध करना चाहिये।' दूसरे ने कहा — 'हमें अलीकुली खां की प्रतीक्षा करनी चाहिये'। इस प्रकार अनेक सरदारों ने वाद-विवाद में भाग लिया। सारी प्रक्रिया से ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि मुगलों में हेमचन्द्र का आंतक छाया हुआ था। अबुल फ़ज़ल के कथन से भी मुगलों में व्याप्त आंतक का आभास होता है। वह लिखते हैं— 'तरदीबेग ने दिल्ली में सुरक्षा के साधन जुटाये और आस-पास के हाकिम हुक्काम इकट्ठे करके युद्ध योजनायें बनाई। उसने न केवल अपना साहस बटोरा, बल्कि अन्य हताश लोगों का धैर्य बँधाया। अन्ततः ६ अक्तूबर १५५६ ई० को दुष्ट हीमू अपने समस्त युद्ध-साधनों के साथ दिल्ली के समीप पहुंच गया और तुग़लकाबाद मे शिविर लगा दिया। मुगल अधिकारियों में स्थिति पर बातचीत हुई। वीर पुरुषों में बहुत से दुनियादारी के कारण और कुछ शत्रु के

भय से युद्ध नहीं चाहते थे। उन्होने कहा कि जब तक शहशाही सेना नहीं आती, हमें हर तरह के सम्भव साधनों से दुर्ग सुदृढ़ रखना चाहिये और रात्रि में धावे करने के लिये अवसर खोजने चाहिये। कुछ ने अलीकुली खाँ के सम्भल से लौटने की प्रतीक्षा करने का आग्रह किया। कुछ बहादुर लोग, जो ख्याति के लिये प्राण-न्योछावर करने को तैयार रहते हैं और जिनके राजभक्त हृदय में भोज-भवन की अपेक्षा युद्ध-भूमी का अधिक आकर्षण है, वे कह रहे थे कि इस अवसर को वरदान समझें और तुरन्त युद्ध में कूद पड़े।'

७ अक्तूबर की प्रातः दोनों सेनायें तुग़लक़ाबाद के मैदान में आ खड़ी हुई। दोनों पक्षों ने अपनी अपनी प्रणाली के अनुसार सैनिकों को व्यूह में व्यवस्थित किया। तरदीबेग ने मुग़ल सेना चार भागों में खड़ी की, अग्रिम दल, दायाँ तथा बायाँ बाजू और मध्य भाग। अग्रिम दल की कमान अब्दुल्ला उज़बेग को दी गई। उसके साथ कियाखाँ गंग भी था। दायाँ बाजू सिकन्दर खाँ उज़बेग को सौंपा गया और बायें बाजू का आदेशक हैदर मुहम्मद खाँ था। मध्यभाग का संचालन तरदीबेग ने सम्भाला। बैरमखाँ का प्रतिनिधि मुल्ला पीरमुहम्मद 'अपनी योजनानुसार' तरदी बेग के साथ जम गया।

हेमचन्द्र ने सेना की व्यूह रचना तीन भागों में की -'मध्य भाग, वाम पक्ष और दायाँ-पक्ष। मध्य भाग उसने स्वयं सभाला, वाम पक्ष पर अल्लादादखाँ नियुक्त किया गया। अहमद यादगार के अनुसार अल्लादादखाँ इतना बहादुर था कि उसने कभी रणक्षेत्र में पीठ नहीं दिखाई थी। दायाँ पक्ष रायहुसैन

जलबानी के सुपुर्द किया गया। यह पहले बताया जा चुका है कि सम्भल से शादीखाँ भी आ चुका था, किन्तु व्यूह में उसकी स्थिति कहाँ थी, इसका कुछ पता नहीं लगता।

हेमचन्द्र के पास लगमग ५०,००० घुड़सवार, १००० हाथी ५१ बड़ी और ५०० हल्की तोपें थीं। संख्या में मुगल सेना भी हेमचन्द्र की सेना से कम नहीं थी। भारी तोपख़ाना मुग़ल सेना की हमेशा विशेषता रही है। वे सभी हाथी जो सरहिन्द की लड़ाई में अफ़गानों से छीने गये थे, मुगलों ने युद्ध में उतारे।

आक्रमण की पहल मुग़ल सेना ने की। उसके तीर-अन्दाजों ने निरन्तर आग बरसानी शुरु कर दी। उन्होंने अफ़गान सेना का हरावल दस्ता पीछे हटा दिया और दायाँ पक्ष चूर चूर कर दिया। मुग़लों की इस आंशिक विजय के परिणाम-स्वरूप हेमचन्द्र का वीर सेनानायक रायहुसैन जलबानी मारा गया और लगभग तीन हज़ार सैनिक खेत रहे। मुग़ल सेना के वाम पक्ष ने अफ़गानों का पीछा बहुत दूर तक किया। कहते हैं कि पीछा करते हुये मुग़ल सैनिक होडल-पलवल तक जा पहुँचे। ऐसी विकट स्थिति में हेमचन्द्र ने अलादादखाँ को आदेश दिया कि वह हरावल में आकर आक्रमण करे। अलादादखाँ ने मुग़लों की प्रगति पर रोक लगा दी, किन्तु तीरों के प्रहार में वह बुरी तरह घायल हो गया। तब हेमचन्द्र ने अपने तीन हज़ार घुड़सवारों और प्रशिक्षित हाथियों के साथ मुग़लों के केन्द्र पर विकराल धावा बोल दिया। इसी समय अलवर से मेवाती सेना के साथ हाजीखाँ पहुंच गया जिसने अफ़गानों के दायें पक्ष की क्षतिपूर्ती करदी। हेमचन्द्र के प्रहार से मुग़ल उखड़ गये और वे भागते दिखाई दिये। डा० रामप्रसाद

त्रिपाठी लिखते हैं –'इस नये संकट के सामने पीरमुहम्मद सहित कुछ मुग़ल सेनानायक भाग निकले, जिससे तरदीबेग को आश्चर्य हुआ और झुंझलाहट थी। उनके भागने से बाकी सेना का ठहरना असम्भव हो गया।' अफ़गानों ने मुग़लों का गम्भीरता से पीछा नहीं किया, तथापि बहुत से भगोड़े मौत के घाट उतार दिये, अहमद यादगार के अनुसार – 'अबुल मुआली के साथ कठोरता का व्यवहार नहीं किया गया, क्योंकि उसने अफ़गानों के साथ गुप्त समझौता किया हुआ था। हेमचन्द्र ने शत्रु के १६० हाथी १००० अरबी नस्ल के घोड़े और अपार धन-राशि, हीरे-जवारात आदि अधिकार में लिये।

इस प्रकार हेमचन्द्र ने मुग़लों को हार पर हार दी। तुग़लकाबाद की यह विजय उसके सामरिक जीवन की सर्वश्रेष्ठ विजय मानी जाती है। अब तक उसने बाइस युद्ध लड़े और सभी युद्धों में विजय प्राप्त की।

वीर हेमचन्द्र के चमत्कारी व्यक्तित्व के विषय में डा० कालिका रंजन कानूनगो अपने ग्रंथ 'शेरशाह और उसका समय' में लिखते हैं–'मध्यकालीन इतिहास में वह बनियों में ऐसा व्यक्ति था जो आटा तोलने में और तलवार का उपयोग करने में सिद्ध-हस्त था। तलवार में तो राजपूत और तुर्क भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते थे।.....महाराणा सांगा के अतिरिक्त अन्य किसी हिन्दू के रणभूमि में इतने अधिक कीर्तिकर घाव नहीं लगे जितने हेमू के लगे थे। किसी भी राजपूत ने विदेशी आक्रमण-कारियों के विरुद्ध ऐसी वीरता से तलवार नहीं उठाई जैसी पानीपत के युद्ध में रेवाड़ी के इस साधारण हिन्दू ने उठाई थी।'

पानीपत के एक उर्दू पद्यकार की पंक्तियां हैं––

सुजाअत में वो था सांगा का सानी
वो बाइस लड़ाईयों का फातह-मुबानी

दिल्लीपति महाराजा हेमचन्द्र विक्रमादित्य

तुग़लकाबाद की विजय के बाद हेमचन्द्र ने दिल्ली में प्रवेश किया। मुग़लों से छीनी हुई धन-सम्पति एवं बहुमूल्य वस्तुएं उसने सामान्तों और सैनिकों में बाट दी और युद्ध का सामान अपने अधिकार में रख लिया।

७ अक्तूबर १५५६ ई० को सूर्यास्त से पहले 'महाराजा हेमचन्द्र विक्रमादित्य' की उपाधि धारण करके वह दिल्ली के सिंहासन पर विराजमान हुआ। सिक्के अपने नाम के जारी किये किन्तु खुतबा आदिलशाह का पढ़ा गया। तदनन्तर हेमचन्द्र ने ग्वालियर से लेकर सतलुज नदी तक के जीते हुये प्रदेशों में विश्वसनीय अधिकारियों की नियुक्तियाँ करके प्रशासन व्यवस्था पूरी की। राजस्व विभाग में चौधरियों और मुकद्दमों के पदों पर प्राय: योग्य वैश्यों को लगाया गया। यहाँ यह बात रेखांकित करने योग्य है कि हेमचन्द्र द्वारा लगाये गये चौधरी तथा मुकद्दम अपने काम में इतने योग्य सिद्ध हुये कि अकबर के शासन काल में भी वे अपने पदों पर काम करते रहे।

सुल्तान आदिलशाह चुनार में निवास करता था। उसके पास हेमचन्द्र ने दिल्ली-विजय की सूचना भजवाई–'आपके खादिम ने आप के भाग्य से मुग़ल सेना को जो लोहे की दीवार की तरह

मजबूत थी, नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है, किन्तु सुना है कि हुमायूं के पुत्र के पास असंख्य सेना है और वह दिल्ली पर आक्रमण करने के लिये आ रहा है इस कारण मैंने मुग़लों के हाथी और घोड़े अपने पास रख लिये हैं जिससे मैं उस वीर सेना का मुक़ाबला कर सकूं और उन्हें दिल्ली तक पहुंचने न दूं ।

विक्रमादित्य की उपाधि से राज-सिंहासन पर बैठना और आदिलशाह को अपना सुल्तान मानकर उसके पास सूचना भेजना, ये दोनों काम बिपरीतात्मक हैं जो हेमचन्द्र ने साथ २ किये । इस प्रक्रिया का वर्णन करके इतिहासकार अहमद यादगार ने एक ऐसी ऐतिहासिक गुत्थी पैदा कर दी जिसे उसके बाद के मध्यकालीन इतिहासकारों और उनके आधुनिक अनुयायियों ने सुलझाने का प्रयास नहीं किया और हेमचन्द्र को छली, कपटी, बलाद्ग्राही आदि फ़तवे दे दिये तथा भद्दी भाषा में तथ्यों को छोड़कर 'मन्तव्य लिखने लगे । अबुल फ़ज़ल ने लिखा–'हेमू ने दिल्ली में प्रवेश करके अपने अधिकार में वृद्धि की । उसका नशा अब पागलपन में बदल गया । कुछ दिन 'राय' बना रहा और फिर 'राजा' की उपाधि ः र विक्रमादित्य की तरह व्यवहार करने लगा ।' अहमद यादगार ने कहा–'मुग़ल सेना के घोड़े, हाथी, सम्पत्ति, जवाहरात आदि हेमू ने सब एकत्रित कर लिये और अपने पास रख लिये । सुल्तान से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी वस्तुएं अपने अधिकार में कर लेने के बाद उसमें महत्वाकांक्षा के भाव पैदा हो गये और सुल्तान को निस्सहाय समझकर उसने हाथियों के अलावा सारी लूट उन सैनिकों में बांट दी जो उसके साथ गये थे । इस प्रकार उन्हें अपने पक्ष में कर लिया । उसने दिल्ली में प्रवेश किया । ाही छत्र लगवाया और अपने नाम के सिक्के जार

करने का हुक्म निकाला । सुल्तान को सन्तुष्ट करने के लिये दिल्ली विजय का वर्णन उसके पास भजवा दिया । सुल्तान धोखे की बातों में आ गया । निज़ामुद्दीन के अनुसार—'हेमू ने अपनी दिल्ली-विजय के विषय में बड़ी शेखी मा ी और राजा विक्रमादित्य की उपाधि धारण कर ली ।' इन इतिहासकारों से आगे बढ़कर मुल्ला बदायूनी एक नई बात लिखते हैं–'अपनी पूरी शक्ति से इस्लाम के सिद्धान्तों को नष्ट करके हेमू पन्द्रह सौ जंगी हाथियों, असी‌ ‌ धन-सम्पत्ति और विशाल सेना के साथ पा ीत आया ।'

आधुनिक इतिहासविज्ञ डा० वी० ए० स्मिथ और प्रो० मुहम्मद हुसैन आज़ाद भी हेमचन्द्र पर अनैतिकता थोंपने से नहीं रुके । निष्पक्षता का त्याग करके पुरानी घिसी-पिटी लकीरों पर चलकर इन्होंने इतिहास की यहां अच्छी सेवा नहीं की । स्मिथ साहब ने लिखा – ' हेमू , जिसने अपने स्वामी आदिल के नाम पर दिल्ली जीती थी , अब सोचने लगा कि उसका सुल्तान बहुत दूर है , इसलिये यह अच्छा होगा कि वह एक गैर-हाज़िर स्वामी की बजाए अपने वास्ते एक सल्तनत बनाले । ऐसी भावना से उसने हाथियों को रखकर लूट का शेष माल अफ़गानों में बांट दिया और इस तरह उन्हें अपने पक्ष में कर लिया ।' आज़ाद साहब ने अपनी अनोखी शैली में व्यंग्य से लिखा – 'दूसरे दिन हेमू दिल्ली में दाखिल हुआ । दिल्ली विचित्र धाम है । कौन सा दिल है जो हकूमत का नशा रखे और वहां पहुंच कर तख्त पर बैठने की इच्छा न करे । उस हिम्मत वाले ने केवल समारोह तथा राजा-महाराजाओं की उपाधियों पर ही सन्तोष नहीं किया, बल्कि बिक्रमाजीत की पदवी से राजमुकुट धारण किया । दिल्ली

जीती , विक्रमाजीत क्यों न हो !'

ऐसे ओछे तथा घटिया उल्लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि द्विवेषी इतिहासकारों की लेखनी अपने नापसन्द ऐतिहासिक पात्रों को धूल में मिला सकती है। इन उल्लेखों के अध्ययन से फ्रायड की यह बात भी ग़लत नहीं है कि इतिहास किसी बालक के खिलौना-अक्षरों की तरह होता है जिसकी सहायता से हम जो चाहें वही लिख सकते हैं।' बास्तव में मध्यकालीन इतिहास विद्वानों ने अपनी भावनाओं के अनुसार चुने हुये तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर पेश करना ही लेखन एवं अध्ययन की समाप्ती समझा। यह बताना कि 'ऐसा क्यों किया गया' अथवा 'यह कैसे हुआ' उनकी रुचि में नहीं था। वे इस सिद्धान्त में भी कतई विश्वास नहीं करते थे कि ऐतिहासिक तथ्यों के पीछे कुछ तार्किक व्याख्यायें होती हैं और व्याख्याओं के बाद ही नैतिक निर्णय दिये जा सकते हैं।

हेमचन्द्र ने प्राचीन भारत के स्वर्णयुगीन सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय की उपाधि 'विक्रमादित्य' धारणा की जिसके कारण उन इतिहासकारों को इतनी चिढ़ हुई कि उन्होंने उसके व्यक्तित्व पर भी हमले किये। उनकी दृष्टि में हेमचन्द्र का दिल्ली के सिंहासन पर बैठना महापाप था, किन्तु तेरह वर्ष के लड़के, जिसके पास उस समय कोई सल्तनत भी नही थी, अकबर को कलानौर के कस्बे में चबूतरे पर बिठाकर 'जलालुद्दीन मुहम्मद पादशाह गाज़ी' की उपाधि से अलंकृत करके 'शहंशाह-ए-हिन्द' बना देना एक अति पुण्य का कार्य हो गया। पक्षपात को छोड़ कर उन्हें निर्णय देना चाहिये था कि हिन्द के राजसिंहासन पर

हेमचन्द्र और अकबर दोनों में किसका अधिकार न्याय-संगत है। हेमचन्द्र मौलिक भारतीय था। वह निज योग्यता तथा भारतीय सैनिकों के शौर्य एवं शुभकामनाओं से अपने देश के सिंहासन पर बैठा जो उसका जन्मसिद्ध अधिकार था। दूसरी ओर अकबर 'भारत में एक विदेशी था उसकी रंगों में भारतीय रक्त की एक बूंद भी न थी।' क्रूरता से भारत पर आक्रमण करने वाले चंगेज खाँ और तैमूरलंग का वह वंशज था। तब उसे भावी और अनिश्चित 'शहंशाह-ए-हिन्द' बना देना कहां तक न्याय-संगत था। इसीलिये मध्यकालीन इतिहास के विषय में इतिहासविज्ञ जी० बैरेकलो ने कहा है –'हम जो इतिहास पढ़ते हैं, हालांकि वह तथ्यों पर आधारित है, ठीक ठीक कहा जाये तो एक दम यथातथ्य नहीं है, बल्कि स्वीकृत फैसलों का एक सिलसिला है।'

हेमचन्द्र पर बड़े ज़ोर शोर से यह आक्षेप किया गया है कि उसने अपने स्वामी सुल्तान आदिलशाह को धोखे में रख कर स्वंय दिल्ली की सुल्तानी प्राप्त करली। ऐसा कहने वाले इतिहास लेखक इस बात को भली भान्ति जानते थे कि सुल्तान आदिलशाह अपनी पूर्वी सल्तनत से सन्तुष्ट था। उसने हेमचन्द्र के दिल्ली-सिंहासन पर बैठने का बुरा नहीं मनाया। इसका प्रमाण इस तथ्य से भी है कि पानीपत में हेमचन्द्र की हार और हत्या की खबरें सुनकर वह शोकातुर हो उठा था। तथापि हेमचन्द्र को बलाद्ग्रही मान लिया जाये तो यह उस युग में अनुचित नहीं था। वह समय नैतिक हृदय-हीनता का युग था। मध्ययुग का इतिहास ऐसे शासकों से ठसाठस भरा पड़ा है जिन्होने अपने स्वामी, भाइयों, रिश्तेदारों का वध करके सिंहासन प्राप्त किया, तब

भी उनमें से कई शासक इतिहास में 'महान सम्राट' लिखे जाते हैं। जिस आदिलशाह पर न्यायाभाव दिखाते हुये इतिहासकारों ने हेमचन्द्र को धूर्त, बलादग्राही कहकर कलंकित करने की चेष्टा की, वह स्वयं भी राज्य प्राप्ती के निमित्त अपने नाबालिग भाजे फिरोजशाह का निर्मम हत्यारा था।

आदिलशाह संगीत और भोग-विलास में इतना डूबा हुआ था कि हेमचन्द्र द्वारा ग्वालियर, इटावा, कालपी, आगरा की विजयों के बाद भी अपने प्रधान सेनापति से आ मिलने के लिये वह बनारस की नर्तकियों को छोड़ कर चुनार के किले से बाहर नहीं आया। मुग़लों के विरुद्ध सारे संघर्ष में उसने हेमचन्द्र को कहीं भी प्रोत्साहन नहीं दिया। दर-असल वह शेरशाह नहीं था जो मुग़लों को भारत से भगाते हुये अपने सेनापति ब्रह्मजीत गौड़ के पीछे पीछे चलता रहा और आगरा, दिल्ली सरहिन्द तथा लाहौर से गुज़र कर सिन्धु के तट पर जा पहुंचा। अगर आदिलशाह मृदंग की थाप और सितार की झंकार छोड़कर कवच पहनता और तुग़लकाबाद के युद्ध में शामिल होकर अपने सेनापति के साथ भव्य विजय-जलूस में दिल्ली-प्रवेश करता, तब हेमचन्द्र का उसके प्रति कैसा व्यवहार होता, यह उन इतिहासकारों के सोचने-समझने का विषय था जिन्होंने उसे बदाद्ग्राही कहा है।

हेमचन्द्र को विक्रमादित्य की उपाधि सुल्तान आदिलशाह ने दी थी। पाठकों को याद होगा कि यह घटना उस समय की है जब हेमचन्द्र ने ताजखाँ किरानी को चुनार के युद्ध में हराया था और वह युद्ध सुल्तान ने स्वयं देखा था। दिल्ली-विजय के बाद

हेमचन्द्र ने इस उपाधि का प्रयोग किया। यह समय की आवश्यकता समझी गई। इस समय ग्वालियर से सत्लुज तक के प्रदेश पुनः अफ़गानों के अधिकार में आ चुके थे। इन प्रदेशों पर सुदृढ़ता से नियन्त्रण रखने के निमित्त केन्द्र में एक साहसी तथा कुशल प्रशासक का होना अनिवार्य था, इसके अतिरिक्त मुग़लों से भावी युद्ध की तैयारियों के लिये दूरस्थ चुनार दुर्ग में सुल्तान आदिलशाह से आदेश लेकर कार्य करना सम्भव नहीं था। अतः इन बदली हुई परिस्थितियों में अफ़गान सामन्तों-सैनिकों ने यह उचित एवं व्यवहारिक समझा कि सुल्तान की अनुपस्थिति में अपने उदार तथा साहसी नेता को सिंहासन पर बिठा दिया जाये। इस बात का अनुमोदन करते हुये राहुल सांकृत्यायन लिखते है– 'हेमचन्द्र को मालूम हुआ कि जिस वंश के लिये वह लड़ रहा है, वह अब इस योग्य नहीं है कि इस बड़े भार को अपने कन्धों पर उठा सके। केवल सूरी नहीं, बल्कि सभी पठान शेरशाह बनने के लिये तुले हुये थे। ऐसी स्थीत में सेना का विश्वास डिग सकता था उसके सेना नायकों और सैनिकों ने जोर दिया, और हेमचन्द्र विक्रमादित्य के नाम से १५५५ में दिल्ली के सिंहासन पर बैठा।

हेमचन्द्र कोई मायावी नहीं था जो सूर सल्तनत के प्रभावपूर्ण सरदारों की इच्छा के विरुद्ध दिल्ली के सिंहासन पर बैठ गया और मुल्ला बदाँयूनी के कथनानुसार उसने इस्लाम के सिद्धान्तों को नष्ट करना शुरु कर दिया। दिल्ली में उसके पुराने अनुभवी अफ़गान अमीर थे जिनमें अल्लादाद खाँ सरवानी, हाजीखाँ, मेवाती, शादीखां, दौलतखाँ किरानी, अहमदखां सूर, हसनखाँ फौजदार, इख्तयार खाँ, संग्रामखाँ, मेकल खाँ आदि उल्लेखनीय

हैं। ये सरदार शेरशाह और स्लीमशाह के काल में मुख्य पदों पर रह चुके थे। इनमें से बहुत से शेरशाही युद्धों में भाग ले चुके थे। उन्होंने सूर सल्तनत का वैभव देखा था और वे यह कभी नहीं चाहते थे कि शेरशाही खण्डहरों पर अकबर के भव्य भवन का निर्माण हो जाये। अतः उन्होंने हेमचन्द्र को दिल्ली के सिंहासन पर बिठा दिया। उन अफ़गान सरदारों को यह पता था कि हेमचन्द्र एक हिन्दू वैश्य है और जिस विक्रमादित्य के नाम से वह शाही छत्र धारण कर रहा है, वह प्राचीन भारत का एक वैष्णवी हिन्दू राजा है। तब भी उन्होंने घृण्य साम्प्रदायिकता से दूर रह कर हेमचन्द्र को अपना 'सुल्तान' बनाया। मुल्ला बदायूंनी और प्रो० आज़ाद ने इस तथ्य की ओर देखने का प्रयास नहीं किया कि राजपूतों और अफ़गानों ने मुग़ल विदेशियों के विरुद्ध मिलकर एक संघर्ष छेड़ा हुआ था जो १५२६ई० में पानीपत की पहली लड़ाई से आरम्भ हुआ और १५५६ ई० में पानीपत की दूसरी लड़ाई तक निरन्तर चलता रहा। उसी संघर्ष के परिवेश में हेमचन्द्र दिल्ली के सिंहासन पर विराजमान हुआ।

इतिहासकारों ने यह भ्रामक तथ्य प्रस्तुत किया है कि हाथियों को अपने पास रखकर लूट का सारा माल अफ़गान सैनिकों में बांट कर उन्हें अपने पक्ष में कर लिया। इस कथन से उन्होंने हेमचन्द्र को धूर्त और अफ़गानों को धन-लोलुप सिद्ध करने का कुत्सित प्रयास किया है। वे इतिहासकार जानते थे कि तुग़लक़ाबाद की विजय से पहले भी हेमचन्द्र प्रत्येक युद्ध के बाद लूट का माल अपने सैनिकों में बाँटता रहा। इसबार कोई नई बात नहीं हुई। इसलिये इस वक्तव्य से यह स्पष्ट प्रतीत

होता हैं कि उनकी साम्प्रदायिक भावनाओं को इस बात से बहुत ठेस पहुंची कि अफ़गानों ने हेमचन्द्र के झंडे तले विधर्मी राजपूतों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर स्वधर्मियों का खून बहाया। यदि वे इतिहासकर विवेक और धार्मिक सहनशीलता से काम लेते तो उन्हें हिन्दुओं-मुसलमानों का यह संगठन उस युग की परिस्थियों में हेमचन्द्र की एक महान उपलब्धि दिखाई देता। वस्तुतः हेमचन्द्र के नेतृत्व में अफ़गानों और राजपूतों ने मिलकर स्वदेश रक्षा के हेतु विदेशियों से युद्ध किये। इन युद्धों से पहले भी पानीपत और कनवाह में उन्होंने इब्राहीम लोधी और राणा सांगा के नेतृत्व में ऐसी राजनीतिक सूझ-बूझ का परिचय दिया था। मूल विरोध भारतीय अफ़गानों और विदेशी मुग़लों में था, हिन्दुओं और मुसलमानों में नहीं। अफ़गान लोग और उनका लोकप्रिय सेनापति हेमचन्द्र मुग़लों को भारत से निकालने के लिये कटिबद्ध थे। उनके लिये देशभक्त बब्बन लोधी तथा बायजिद फारमूली का शुद्ध राष्ट्रवाद प्रेरणा का स्त्रोत बना हुआ था। चौसा तथा बिलग्राम में मुग़लों पर विजय की गाथायें उन्हें याद थीं। मछीवाड़ा और सरहिन्द में पड़े मुग़ल प्रहार भी वे भूले नहीं थे। सरहिन्द के युद्ध में आहत अफ़गानों की खोपड़ियों से बनाया हुआ 'सर-ए-मन्ज़िल' मीनार रह रहकर उनकी आँखों में नाचा करता था। इसलिये वे धन-लोलुप नहीं, भावुक थे। भावुकतावश वे हेमचन्द्र को चाहते थे। वह उनका सम्मानीय वीर, सफ़ल सेनापति और लोकप्रिय राजा था। उन्हें इस बात का गर्व था कि हेमचन्द्र के सुयोग्य संचालन में उन्होंने जितने भी युद्ध लड़े उन सब में उन्होंने शत्रु को भागते हुये देखा था।

इस सारी व्याख्या से पाठकवृन्द ने सम्भवतः यह अनुमान लगा लिया होगा कि हेमचन्द्र के ऐतिहासिक तथ्यों की जांच पडताल यदि सावधानी और निष्पक्षता से की जाये तो यह निश्चित पता लगना है कि मध्यकालीन फ़ारसी इतिहासकारों और उनके आधुनिक शिष्यों ने हेमचन्द्र के अधिकाँश तथ्य द्वेष भाव से लिखे हैं और अशोभनीय भाषा तथा व्यंग्यात्मक शैली में ग़लत जानकारी देकर उसके चरित्र को विकृत करने की चेष्टा की है।

उस युग की परिस्थियों, हेमचन्द्र के चरित्र और अफ़गानों में धार्मिक सहनशीलता तथा मुग़लों के प्रति वैर-भाव के सूक्ष्म अध्ययन के बाद यह कहना अतिश्योक्ति नहीं हो सकती कि हेमचन्द्र द्वारा ७ अक्तूबर १५५७ को दिल्ली में शताब्दियों के बाद एक धर्मनिर्पेक्ष राष्ट्रीय सल्तनत की स्थापना हुई। अतः अकबर को पहला राष्ट्रीय सम्राट कहना नितान्त ग़लत है। मध्यकालीन भारत का सबसे पहला राष्ट्रीय सम्राट महाराजा हेमचन्द्र विक्रमादित्य था और उसकी सेना देश की प्रथम राष्ट्रीय सेना थी जिसका मात्र उद्देश्य भारतीय स्वराज्य की रक्षा के हेतु मुग़ल आक्रान्ताओं को यहाँ से बाहर निकालना था।

हेमचन्द्र की उपाधि 'विक्रमादित्य' का अर्थ है 'शौर्य का सूर्य' यह उपाधि मगध नरेश चन्द्रगुप्त द्वितीय की थी। उस वैष्णवी सम्राट की छत्र-छाया में शैव, जैन, बौध आदि सभी धर्मों के लोग समानता एवं स्वतन्त्रता के अधिकारों का उपभोग करते थे और उन्हें सभी प्रकार की राजनीतिक तथा धार्मिक सुविधायें मिली हुई थी। ठीक उसी तरह हेमचन्द्र अपने राज्य को धर्मनिर्पेक्ष आधार देकर सभी धर्मों के लोगों को अपने साथ रखना चाहता था।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का मुख्य राजनीतिक उद्देश्य विदेशी शकों को भारत से बाहर खदेड़ना और आक्रमणकारी हूणों को देश में आने से रोकना था। इसी तरह हेमचन्द्र और उसके अफ़गान सहयोगी आक्रमणकारी मुग़लों को भारत में रखना नहीं चाहते थे।

मुग़ल-शिविर में हेमचन्द्र का आतंक

दिल्ली की विपत्ति के बाद तरदीबेग ने, भागने से पूर्व, कफ़न में लिपटी हुई अथवा कब्र खोदकर हुमाँयू की लाश प्राप्त की और इसे पंजाब में ले गया। उसने यह भद्दा काम शायद इस कारण से किया कि उसे यह पक्का विश्वास हो गया था कि मुग़ल अब दोबारा दिल्ली नहीं आ सकेंगे और हुमाँयू का मक़बरा काबुल में बनाया जायेगा।

तुग़लकाबाद के युद्ध में जिन सैनिकों ने अफ़गानों का पीछा पलवल तक किया था, वे वापस आये तो देखा कि युद्ध-भूमि में जहां तरदीबेग को छोड़ा था, वहां हेमचन्द्र के थके हुये सैनिक विश्राम कर रहे हैं। वे हैरान थे कि यह क्या हुआ, जीत हार में कैसे बदल गई। आखिर चुपचाप धीरे धीरे वे दिल्ली के पास से खिसक कर पंजाब की ओर चल दिये। युद्ध से अगले दिन अलीकुली खाँ आया। वह भी गुप्त-रूप से पंजाब जा पहुँचा।

अकबर जालन्धर में था कि उसे दिल्ली की ख़बर मिली। बाप की मृत्यु का दुःख अभी छाती पर सवार था कि यह ख़बर भी सुननी पड़ी। चारों तरफ़ शोक छा गया। शेरशाही दृश्य दिखाई देने लगे। बैरमखाँ ने जालन्धर से शिविर उठा लिया और दिल्ली की ओर चल पड़ा। परन्तु दिल्ली अभी दूर थी, उसे सरहिन्द में

रुकना पड़ा। यहां तुग़लक़ाबाद की युद्ध-भूमि से भागे हुये मुग़ल सरदार आने शुरु हुये। कभी सिकन्दर उज़बेग तो कभी हैदर मुहम्मद खाँ, कियाखाँ गंग, अब्दुल्ला उज़बेग आदि भागे चले आ रहे थे। अलीकुली खाँ शैबानी भी पहुंच गया। तरदीबेग और मुल्ला पीर मुहम्मद इकट्ठे आये। किसी ने आँखों देखा हाल बताया तो किसी ने युद्ध में आप-बीती सुनाई जिसके कारण शिविर में भयावह वातावरण पैदा हो गया। इन अमीरों से जिज्ञासु लोग भान्ति भान्ति के उलटे-सीधे प्रश्न पूछने लगे –' हेमू कैसा है ? सचमुच वह बनिया इतना बहादुर है ? क्या यह ठीक है कि तरदीबेग से पहले पीर मुहम्मद भागा ? हेमू के हाथी कैसे हैं ? क्या सच है कि अबुलमुआली ने शत्रु से गुप्त सन्धि की हुई थी ?

मुग़लों के लिये तुग़लक़ाबाद की हार अत्यन्त भीषण घटना थी। इसकी सारी जिम्मेवारी तरदीबेग के सिर थोंपी गई। बैरम खाँ की तरदीबेग से खटकी हुई थी। वह उसे समाप्त करना चाहता था और इससे अच्छा अवसर उसे कब मिल सकता था। एक दिन जब बादशाह शिकार पर गया हुआ था, बैरम खाँ ने उसकी हत्या कर दी।

इस समय मुग़ल शिविर की मान्सिक दशा अति शोचनीय थी। बड़े-छोटे लगभग सभी मुग़ल अमीर भयाकुल थे और सैनिकों में घोर आतंक फैला हुआ था। इस आतंक का मुख्य कारण यह था कि आगरा और तुग़लाक़बाद की मार से मुग़लों में हेमचन्द्र की शक्ति की धाक बैठ गई थी। बाइस युद्धों का विजेता हेमचन्द्र अब एक ख्याति प्राप्त सेनापति था जिसकी सामरिक फुर्ती, रण-चातुर्य साहस और शौर्य के कारनामों से समस्त उत्तरी भारत

के लोग परिचित हो चुके थे और जिसकी चमत्कारी विजयों की कहानियाँ-किस्से गाँव २ और नगर २ में लोगों की जुबाँ पर थे। उसके भय से मुग़ल सेना में दिल्ली की ओर बढ़ने का ज़रा भी साहस नहीं था।

ऐसी विकट परिस्थितियों से घबराये हुये मुग़ल अमीर आपस में कह रहे थे –'बुरा समय आ पड़ा है, अच्छा है कि काबुल को उठ चलें, अगले वर्ष पूरा प्रबन्ध करके आयेंगे और शत्रु को भगा देंगे।' निःसन्देह इस समय मुग़ल सेना की दशा वही थी जो १५२७ ई० में कनवाह के युद्ध से पहले राजपूतों से भयभीत बाबर की सेना की थी। बैरमखाँ ने जब यह रंग देखा तो उसने वही किया जो बाबर ने कनवाह से पहले सैनिकों में मनोबल उभारने के लिये किया था। उसने सभी मुग़ल सामन्तों-सैनिकों को 'दरबार-ए-आम' में इकट्ठा किया। बादशाह को मध्य में एक सुसज्जित सिंहासन पर बिठाकर उसने सैनिकों की हिम्मत बढ़ाने के लिये उन्हें सम्बोधित किया।

बैरमखाँ ने प्रभावशाली भाषण दिया--' एक साल पहले की बात है जब शाह जन्नत मकाँ (हुमायूं) के साथ हम आये और इस देश को घोड़े की रास खींचे बिना ही जीत लिया। इस समय सेना, सामान, खज़ाना, हर तरह से देखिये, पहले से अधिक हैं, कमी है तो यह है कि वह शाह नहीं। यह बात क्या है जो हम हिम्मत छोड़ दें, क्या इसलिये कि हमें अपनी जानें प्यारी हैं। क्या इस वास्ते की बादशाह हमारा नौजवान लड़का है। खेद है हमारे हाल पर कि जिसके बुजुर्गों का हमने और हमारे बाप दादा ने नमक खाया है, ऐसी नाजुक घड़ी में इससे जानें अधिक प्यारी

समझें, और वह देश जिस पर इसके बाप-दादा ने तलवारें मारकर, हज़ारों जानों का जोख़म उठाकर अधिकार किया था, उसे दुश्मन को सौंप कर चले जायें। जब हमारे पास कुछ सामान न था और सामने दो पीढ़ी के दावेदार अफ़ग़ान थे, वे तो कुछ न कर सके, यह सोलह सौ वर्ष का मरा हुआ विक्रमाजीत आज क्या करेगा। खुदा के वास्ते हिम्मत न हारो और ज़रा सोचो। मान-सम्मान तो यहाँ छोड़ा, जानें लेकर निकल गये तो मुंह किस देश में दिखायेंगे। सब कहेंगे कि बादशाह तो लड़का था, तुम पुराने अनुभवी सैनिकों को क्या हुआ था, मार न सकते थे तो मर गये होते।'

बैरमखाँ के शब्दों को सुनकर चारों तरफ़ सन्नाटा छा गया। तब बादशाह ने भी दरबारियों को सम्बोधित किया – 'दुश्मन सिर पर आ पहुंचा है। काबुल बहुत दूर है, उड़कर भी जाओगे तो नहीं पहुँच सकोगे। मेरे मन की बात तो यह है कि जब हिन्दुस्तान के साथ सिर लगा हुआ है, जो हो सो यहीं हो, या तख्त या तख्ता।

सेना में मनोबल स्थापित करने के बाद हर तरह के सैनिक-असैनिक प्रबन्ध पूरे करके मुग़ल सेना ने सरहिन्द से दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। रास्ते में बादशाह ने पीरों-फ़कीरों की दरगाहों पर माथे टेके। थानेश्वर पहुंच कर पड़ाव डाला। सेना की गणना की गई। बीस हज़ार घुड़सवार थे। यहां भी सैनिकों में हेमचन्द्र के आतंक के चिन्ह दिखाई दिये। अहमद यादगार लिखते हैं –' जब हेमू के वीरतापूर्ण कार्यों के वर्णन प्रतिदिन पहुंच रहे थे तो एक दिन बैरमखाँ बादशाह को शेख़ जलाल थानेश्वरी के पास ले गया। बादशाह ने सन्त के चरण चूमे और विजय का आशीर्वाद लिया।

सराय घरौंडा पहुँचकर बैरमखाँ ने अलीकुली खाँ शैबानी के संरक्षण में एक सैनिक दस्ता आगे भेज दिया जिसमें चार हज़ार चुने हुये घुड़सवार और अनुभवी सेनानायक थे।

पानीपत में हेमचन्द्र की हार

दिल्ली के सिंहासन पर हेमचन्द्र को बैठे कुछ ही दिन हुये थे जब उसके गुप्तचरों ने ख़बर दी कि मुग़लों ने काबुल लौट जाने का इरादा छोड़ दिया है और साहस जुटाकर वे दिल्ली की ओर आ रहे हैं। इसलिये हेमचन्द्र ने सैनिक तैयारियाँ पूरी कीं और राजधानी से बाहर आगे बढ़कर पंजाब में कहीं भी शत्रु से लोहा लेने का निश्चय किया।

दिल्ली की विजय के बाद हेमचन्द्र की सेना में लगभग सभी वर्गों के सैनिक थे। अब यह अफ़ग़ान सेना नहीं, बल्कि एक धर्मनिर्पेक्ष सुसंगठित भारतीय सेना थी, जिसमें गंगा की घाटी और हरियाणा से आये हुये अफ़ग़ानों, राजपूतों, गूजरों, बैश्यों, जाटों, आहीरों आदि के दस्ते शामिल थे।

डा० दशरथ शर्मा के अनुसार भारतीय सेना में केवल बीस हज़ार पैदल एवं घुड़सवार थे और मुख्य शक्ति १५०० हाथियों की थी। इतिहासकार अल्फी ने हाथियों की संख्या तीन हज़ार बताई है। डी लेट लिखते हैं कि भारतीय सेना में एक लाख घुड़सवार तथा ५०० हाथी और बहुत बड़ी संख्या में पैदल थे। फ़रिश्ता के अनुसार हेमचन्द्र के पास इतनी विशाल सेना थी कि

वह च्यूंटियों तथा टिड्डीदल जैसी दीख पड़ती थी। इन विभिन्न मतों से यह अनुमान लगता है कि भारतीय सैनिकों की संख्या लगभग ५०,००० थी और यह मुग़ल सेना के सन्तुलन में थी।

मुग़ल सेना में प्राय: विदेशी सिपाही थे। जिनमें मुग़ल, तुर्क, उज़बेग, ईरानी, और कुछ अफ़गान भी थे। मुग़ल सेना की मुख्य शक्ति हल्के घुड़सवारों में केन्द्रित थी। गज सेना और पर्याप्त संख्या में भारी तोपें भी थी। तीर अन्दाज़ों, बन्दुकचियों, और शमशीर बाजों के दस्ते पैदल सेना की विशेषता थी।

मुग़ल सेना को आगे बढ़ने से रोकने के प्रयास में हेमचन्द्र ने अपना अग्रदल सन्नूचे तोपखाने के साथ आगे भेज दिया। मुग़लों का अग्रिम सैनिक दस्ता अलीकुली खाँ के नेतृत्व में सराय घरौंडा से चलकर पानीपत पहुंच गया और दोनों की भिडन्त में मुग़लों ने भारतीय तोपखाना छीन लिया। डा० के० सी० यादव 'हरियाणा का इतिहास' में लिखते हैं –' सुरक्षा और क्षमता की दृष्टि से यह सेना अच्छी नहीं थी। जब इन की टक्कर अलीकुली खाँ के नेतृत्व में १०,००० सैनिकों के मुग़ल अग्रदल से हुई तो वह घबरा उठे और बिना ठीक प्रकार से लड़े भाग खड़े हुये। यह हेमू की महान भूल थी। उन्हें ऐसा कमज़ोर सैन्य दल पहले नहीं भेजना चाहिये था। हेमू इस हार से कतई भी विचलित नहीं हुआ और आन्धी तूफ़ान की तरह शत्रु की तरफ़ बढ़ा ?

यह भी कहा जाता है कि अग्रिम सैन्यदल के संचालक मुबारक खाँ और दौलत खाँ के विश्वासघात के कारण हेमचन्द्र का तोपखाना छीना गया। यद्यपि बदाँयूनी ने लिखा है कि अफ़गान लोग हेमचन्द्र से खुश नहीं थे, किन्तु पानीपत के युद्ध में अफ़गान

मुग़लों से बड़ी वीरता से लड़े इसलिये यह बात ग़लत प्रतीत होती है कि हेमचन्द्र का तोपख़ाना अफ़गान सेनानायकों के विश्वासघात से छीना गया। हेमचन्द्र अफ़गान तथा अन्य सैनिकों से मित्रवत् व्यवहार करता था और वह उनमें लोकप्रिय था। मुल्ला बदांयूनी एक जगह यह भी लिखते हैं–'दिन में एक बार हेमू अपने साथियों के साथ बैठकर खाना खाया करता था और अफ़गानों को भी बुलाता था और जब उनके साथ खाता था तो उनसे कहता था कि बड़े २ ग्रास लो और जो धीरे २ खाता था तो उसे गाली देता था और कहता था –यदि तुम्हें इतनी कम भूख है तो तुम इन दुर्जन मुग़लों से कैसे लड़ोगे।' बदाँयूनी के कथन से यह स्पष्ट है कि हेमचन्द्र अपने सैनिकों से घुल-मिल गया था। इसलिये हेमचन्द्र के प्रति अफ़ग़ानों के विश्वासघात की बात में सार नहीं है

युद्ध से दो तीन दिन पूर्व दोनों सेनायें पानीपत के ऐतिहासिक मैदान में आ डटी। इस समय भी मुग़ल सैनिकों में हेमचन्द्र का आतंक था। अहमद यादगार लिखते हैं–'युद्ध से तीन दिन पहले बहरमखाँ ने एक दावत दी और चग़ताई जाति के लोगों को अमूल्य खिल्लतें तथा शाही भेंट देकर खुश किया और भावी कृपाओं के वचन भी दिये गये। बहरमखाँ ने कहा—'यह आपके राज्य का आरम्भ है। इस काफ़िर ने हमारी सारी सेना नष्ट-भ्रष्ट कर दी है और अब हम पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा है। यदि तुम एक दिल और एक जान होकर उत्तम ढंग से काम करो तो हिन्दुस्तान तुम्हारा है।'

यह युद्ध पानीपत नगर से लगभग चार मील पश्चिम की ओर शोधापुर में हुआ। इतिहास में इसे 'पानीपत की दूसरी लड़ाई

कहा जाता हैं। पानीपत के एक ऊर्दू पद्यकर की नज्म 'महाराजा हेमचन्द्र' की पंक्तियाँ हैं –

मैदाने शोधापुर में ये फौजें भिडी
'हवाई' पै हेमू बहादुर बली
ज्योंही फ़ौज-ए-फ़ील उसकी आगे बढ़ी
मुग़ल गुड़सवारों में भगदड़ मची

हेमचन्द्र ने सेना की व्यूह रचना तीन भागों में की। उसने स्वयं मध्य भाग की कमान सम्भाली जिसमें ५०० हाथी, ३०,००० अफ़गान-राजपूत घुड़सवार थे। दायें पक्ष का संचालन शादीखाँ को दिया गया तथा बायें पक्ष पर हेमचन्द्र के भांजे रमैया को लगाया गया। सेना के आगे चुने हुये ५०० हाथी युद्ध-भूमि के आर-पार एक लम्बी पंक्ति में रखे गये और इन हाथियों पर बन्दूकची तथा तीर-अन्दाज़ सिपाही बिठाये गये।

मुग़ल सेना का प्रमुख सेनापति बैरमखाँ था। अली कुलीखाँ को १०,००० प्रशिक्षित तथा अनुभवी सैनिकों के साथ अग्रिम भाग का संचालन सौंपा गया। मध्य में भारी तोपों की पंक्तियाँ लगाई गई। दायें तथा बायें बाजुओं पर क्रमशः सिकन्दर खाँ उज़बेग और अब्दुल्लाखाँ उज़बेग नियुक्त किये गये। बैरमखाँ ने अबुल मुआलीं के संरक्षण में ६,००० सैनिक रिजर्व पानीपत के बायें ओर रख लिये। उसे यह आदेश दिया गया कि भिडन्त की भीषणता के समय वह शत्रु-सेना के पीछे पहुँचकर आक्रमण करे। युद्ध-भूमि से छः सात मील दूर पीछे एक ऊंचे टीले पर अकबर को तीन हज़ार सैनिकों की सुरक्षा में ठहराया गया। बैरमखाँ भी उसके पास रहा।

५ नवम्बर १५५६ ई० को युद्ध शुरु हुआ। चूंकि हेमचन्द्र के पास तोपखाना नहीं था, इसलिये दोनों सेनायें तुरन्त भिड़ गईं युद्ध का निर्णय शीघ्र करने के निमित्त हेमचन्द्र ने प्रारम्भ में ही भयंकर संग्राम छेड़ दिया। सामरिक सूझ से उसने चुने हुये मुग़लों के हरावल दस्तों पर प्रहार किया, ताकि शेष कार्य सरल हो जाये विशालकाय काले हाथियों से भयभीत होकर मुग़ल पीछे हटने लगे। प्रो० मुहम्मद हुसैन आज़ाद ने लिखा-'काले पहाड़ों ने अपनी जगह से हरकत की और काली घटा की तरह आये।' अहमद यादगार के अनुसार–'हेमू ने आगे बढ़कर युद्ध किया और मुग़लों को खदेड़ दिया। उनके सिरों के ढेर लग गये थे और उनके रुधिर के नालें बह रहे थे।' इस प्रकार हेमचन्द्र का प्रथम प्रहार पूरी तरह से सफ़ल रहा।

भारतीय सेना के हाथी मुग़ल मध्य को बुरी तरह धकेले जा रहे थे कि एक गहरे खार ने उनकी प्रगति रोक दी। अलीकुली खां ने इस प्राकृतिक स्थिति से लाभ उठाया और शत्रु के पीछे आकर आक्रमण करने लगा। परन्तु हेमचन्द्र मुग़ल सेना के बायें दायें जाकर निरन्तर प्रहार करता रहा। उसने बायें और दायें पक्ष को तहस-नहस कर दिया। इसी समय भारतीय सेना के दो महान सेनानायक भगवान दास और शादी खाँ मारे गये।

मुग़ल-केन्द्र को तोड़ने के लिये हेमचन्द्र ने पुनः आक्रमण किया। 'हाथी तलवार सूंडों में फ़िराते और जंजीर झुलाते आगे आये। भीषण युद्ध हो रहा था, मुग़ल सैनिकों ने देखा कि घोड़े हाथियों से डर कर बिदकते हैं तो कूद पड़े और गज-पंक्तियों में घुसकर तलवारों, तीरों और कुल्हाड़ों से हाथियों के पैरों पर वार

करने लगे। हेमचन्द्र 'हवाई' हाथी से अपने सैनिकों को शाबाश दे रहा था। प्रो० आज़ाद ने लिखा है –' हेमू की बहादुरी तारीफ़ के क़ाबिल है। वह तराजू-बाट का उठाने वाला, दाल-चपाती का खाने वाला हौदे के बीच में नंगे सिर खड़ा सेना की हिम्मत बढ़ा रहा था।' हेमचन्द्र के इस आक्रमण से मुगलों के पाँव उखड़ गये और भारतीय सेना की विजय निश्चित दिखाई देने लगी। हेमचन्द्र के इस शौर्यपूर्ण आक्रमण के वर्णन में प्रतिरोधी इतिहास कार अबुल फ़जल को भी उसकी प्रशंसा करनी पड़ी। वह लिखते हैं –' हेमू ने ऐसे प्रत्येक दाँव-पेंच का प्रदर्शन किया जिसकी कल्पना उसकी बौद्धिक क्षमता कर सकती थी और ऐसा प्रत्येक वीरतापूर्ण कार्य किया जो उसकी आत्मा में निहित था। उसने सशक्त आक्रमण किये और जवाँमर्दी के जौहर दिखाये और बहुत से दृढ़ मुग़ल सैनिक उखाड़ दिये।'

मुग़ल सेना भागने को थी कि अचानक एक तीर हेमचन्द्र की आंख में लगा जिससे वह बेहोश होकर हौदे में गिर पड़ा और भारतीय सेना में अफ़वाह फैल गई कि हेमचन्द्र मारा गया। परिणाम-स्वरूप हेमचन्द्र की सेना बिखर कर भागने लगी और मुग़लों ने मैदान मार लिया।

'अचानक आँख में तीर' लगने की इस घटना का वर्णन करते हुये डा० के० सी० यादव लिखते हैं --' उसका पलड़ा भारी था और सम्भवत: विजयश्री उसे वरने वाली थी कि अचानक एक तीर उसकी आँख में लगा जो पुतली को छेदता हुआ सिर के नीचे की तरफ़ पीछे निकल गया और वह मूर्छित हो गया। उसके सैनिकों ने हौदा खाली देखा तो वे भाग खड़े हुये।

थोड़ी देर बाद कुछ चेत हुआ तो उठकर हेमू ने दोनों हाथों से कसकर तीर को पकड़कर ज़ोर से बाहर खींचा। तीर के साथ नेत्र भी बाहर निकल पड़ा। हेमू ने जख्म पर रूमाल रखा और अति कष्ट की दशा में होते हुये भी अदम्य साहस के साथ बचे-खुचे व्यक्तियों को साथ लेकर शत्रु की पंक्तियों के बीच से वापस मुड़ने के लिये युद्ध करता रहा। किन्तु अब विशाल सुदृढ़ सेना के बीच घिरे, अधमरे हेमू के लिये मुट्ठी भर सैनिकों की सहायता से बचकर निकलना असम्भव था। वह बन्दी बना लिया गया। 'पानीपती', पद्यकार की पंक्तियों में –

अचानक लगा आंख में तीर आकर
गिरा हेमू हौदे में चक्कर सा खाकर
लिया घेर हाथी को मुग़लों ने आकर
कहाँ मर्दे मैदा कहाँ उसके जौहर

हेमचन्द्र का महावत अपने स्वामी को किसी सुरक्षित स्थान पर ले जाना चाहता था। परन्तु श्रेष्ठ 'हवाई' हाथी को पकड़ने की चाह में एक मुग़ल सरदार शाहकुली महरम अपने सैनिकों के साथ उसके पीछे लग गया और हाथी को पकड़ लिया। शाहकुली यह देख कर बहुत प्रसन्न हुआ कि इस हाथी के हौदे में हेमचन्द्र हैं।

'तबकात-ए-अकबरी' के लेखक निजामुद्दीन लिखते हैं –'जब हेमू हौदे में गिर पड़ा और उसका महावत भी मारा गया तो हेमू का हाथी जंगल की ओर भाग गया। तब ऐसा हुआ कि शाहकुली को वह हाथी मिल गया और उसने अपना महावत उस पर चढ़ा दिया। तब महावत ने देखा कि हौदे में एक आदमी आहत हुआ

पड़ा है और जब उसे अच्छी तरह देखा गया तो सिद्ध हुआ कि वह हेमू है। शाहकुली समझ गया कि उसे एक महत्वपूर्ण वस्तु मिली है। उसने हाथी चलाया और उन असंख्य लोगों के साथ जो युद्ध-भूमि में पकड़े गये थे, उसे बादशाह के सामने ले गया।

इस तरह बाइस युद्धों का विजेता, अपने युग का परमवीर हेमचन्द्र यह तेइसवाँ युद्ध हार गया। उसकी हार के क्या कारण थे ? इसके उत्तर में डा० रामप्रसाद त्रिपाठी लिखते हैं—'सोहलवीं शती के अत्यन्त चमत्कारिक व्यक्ति की जीवन-लीला समाप्त हुई। अफ़गान सैनिकों की उसके प्रति असीम श्रद्धा थी और वे उसके नेतृत्व में बहुत दृढ़ता से लड़ते रहे। उसकी अन्तिम हार के बहुत से कारण बताये जाते हैं, परन्तु यदि वे द्वेषपूर्ण नहीं तो काल्पनिक या अटकल-पच्चू अवश्य हैं। उसकी हार के कारण थे उसके तोपखाने की हानि और अचानक उसकी आँख में तीर लगना जिससे वह बेहोश हो गया और उसकी सेना में घबराहट फैल गई। उसकी हार और अकबर की जीत में भाग्य का हाथ रहा—एक के विपरीत, दूसरे के पक्ष में।

डा० त्रिपाठी के मतानुसार हेमचन्द्र की हार तोपखाने के अभाव तथा आंख में तीर लगने से हुई। परन्तु यदि इस युद्ध की घटनाओं को गहराई से देखा जाये तो यह कहीं नहीं मिलता कि मुग़लों ने तोपों का प्रयोग किया। दोनों ओर के सैनिक अपनी तरफ़ों को बदलकर संघात में इतने उलझे हुये थे कि हेमचन्द्र भी तोपों का प्रयोग नहीं कर सकता था। इसके अतिरिक्त अनेक इतिहास-विद्वानों ने यह माना है कि तोपखाने की कमी के बावजूद भी, यदि आंख में तीर न लगता, तो हेमचन्द्र की विजय निश्चित

थी। इसलिये यह कहना असंगत नहीं है कि हेमचन्द्र की हार केवल मात्र अचानक आँख में तीर लगने की प्रक्रिया से हुई। 'पानीपती' पद्यकार की पंक्तियों में—

कहानी में हेमू की यह एक सबक़ है
ज़रे 'अचानक' ज़मीं व फ़लक है
'अचानक' के आगे न तेग़ो-तफ़ंग है
'अचानक' बहादुर की करता हत्क है

रणक्षेत्र में हेमचन्द के घातक घाव लगने के बाद भारतीय सेना में भगदड़ मच गई। सिकन्दर खाँ उज़बेग के नेतृत्व में मुग़लों ने भागते हुये सैनिकों का दिल्ली तक पीछा किया और लगभग पांच हज़ार सैनिक मौत के घाट उतार दिये और हज़ारों बन्दी बनाये।

हेमचन्द्र की हत्या

बन्दी हेमचन्द्र को शोधापुर के शिविर में अकबर के सामने लाया गया। पराजय और घावों की जलन से वह मुरझाया हुआ था। बादशाह अथवा बहरमखाँ के किसी भी प्रश्न का उत्तर देना, उस स्वाभिमानी ने अपना अपमान समझा। उसे खेद इस बात का था कि देश को आक्रमणकारियों से बचाने में वह असफ़ल कैसे रहा, वह शत्रु से युद्ध करता हुआ रणक्षेत्र में क्यों नहीं मारा गया और यहाँ बैरी का बन्दी बनकर क्यों आ गया। मुग़ल अमीरों-वज़ीरों ने अफ़गानों तथा अन्य भारतीयों के इस लोकप्रिय नेता को बन्दीगृह में रखना ख़तरनाक प्रतीत हुआ और उसकी तुरन्त हत्या करना ही राज्य के हित में श्रेयकर समझा। श्री राहुल साँकृत्यायन

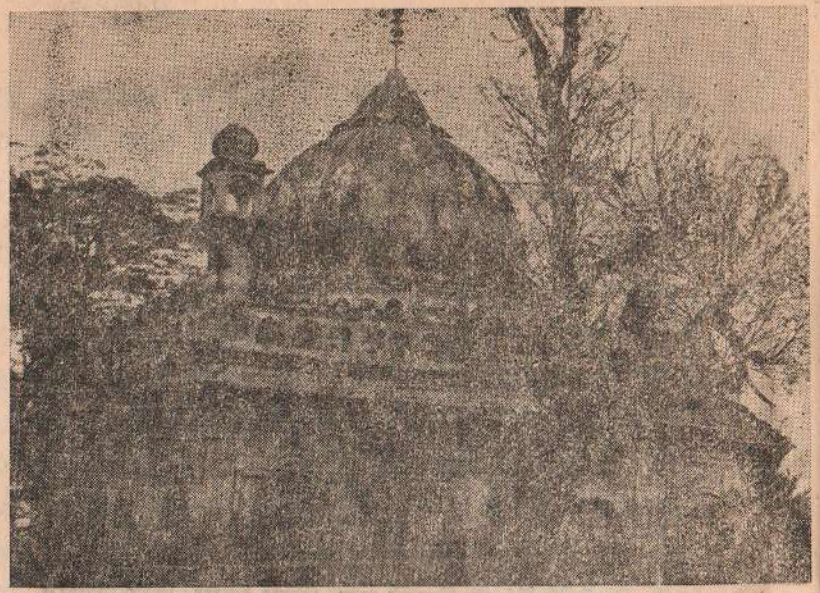

के अनुसार-'यदि अकबर अभी चौदह बर्ष का छोकरा न होता और उसका ज्ञान और तजुर्बा परिपक्क होता तो इसमें शक नहीं कि हेमचन्द्र को वह अपनी तरफ़ करने की कोशिश करता और वह अकबर के नौ रत्नों में होते।' परन्तु मुग़ल हेमचन्द्र से अनेक युद्धों में बुरी तरह हारे थे, वे उससे तुरन्त प्रतिकार लेने के इच्छुक थे। इसलिये बैरमखाँ ने अकबर से निवेदन किया--'इस काफ़िर को आप अपने हाथ से क़त्ल करके 'गाज़ी' की उपाधि धारण कीजिए।' इतिहासकार अबुलफ़ज़ल लिखते हैं कि बालक बादशाह ने बैरमखाँ का सुझाव मानने से इंकार कर दिया और तर्क दी कि मरते हुये को मारना मैं पसन्द नहीं करता। तब बैरमखाँ ने उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। मुल्ला बदायूंनी के अनुसार —'बैरमखाँ ने कहा, यह आपका प्रथम धर्म-युद्ध है, इस काफ़िर पर अपनी तलवार आज़माओ। यह बड़ा पुण्य का कार्य होगा।' अकबर ने उत्तर दिया, –यह मरा हुआ ही है, इसमें क्या दम है। यदि इसमें कुछ चेतना और शक्ति होती तो मैं अपनी तलवार आज़माता। तब इसे धार्मिक कृत्य समझ कर धर्मवीर बैरमखाँ ने हेमू पर तलवार से वार किया। उसके बाद शेख़ गदाई कम्बोह तथा अन्य उमराव ने हेमू की हत्या कर दी।' निजामुद्दीन और अब्दुल्ला ने भी लगभग यही लिखा।

इन फ़ारसी इतिहासकारों के मत से उन्ही के कुछ समकालीन लेखक सहमत नहीं हैं। इनमें अहमद यादगार तथा आरिफ़ कन्धारी उल्लेखनीय हैं। इनका मत है कि हेमचन्द्र की हत्या अकबर ने की। 'तारीख-ए-अकबर शाही' का लेखक आरिफ़ कन्धारी मुग़ल दरबार में महत्वपूर्ण पद पर था, वह अबुल फ़ज़ल

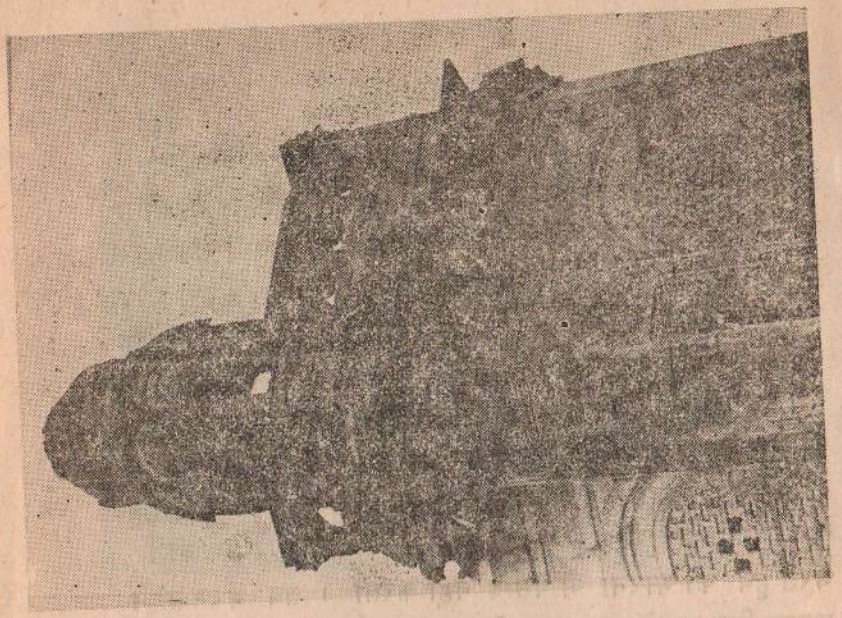

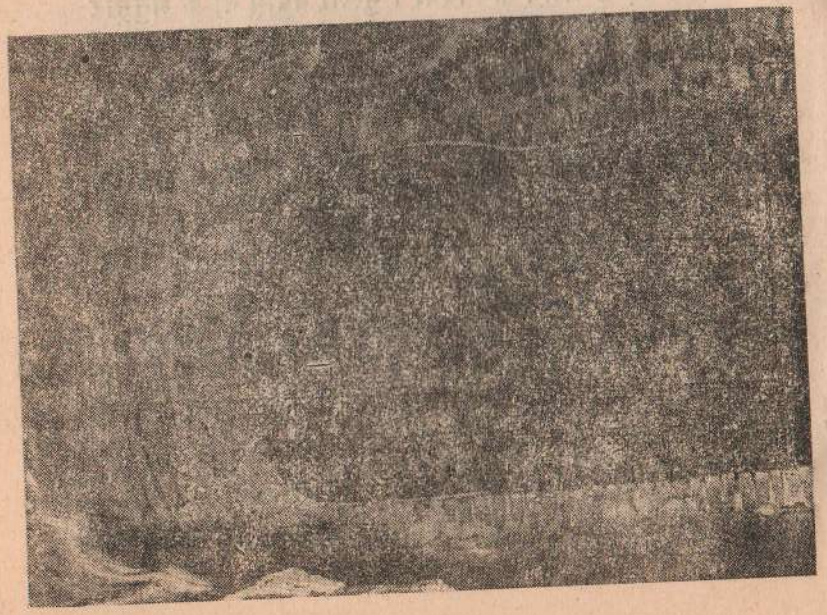

बदायूंनी, निजामुद्दीन और अबदुल्ला से पूर्वकालीन इतिहासकार है और उसने पानीपत की इस लड़ाई का आँखो देखा वर्णन दिया है। अतः उससे उत्तम साक्ष्य अन्य इतिहासकार नहीं हो सकता।

आरिफ़ कन्धारी के कथन का समर्थन वान डी ब्रोक, डी लेट, वी० ए० स्मिथ आदि विदेशी इतिहासकारों ने किया है। स्मिथ लिखते हैं—'बैरमखाँ की इच्छा थी कि अकबर हेमू की हत्या करके 'गाज़ी' की पदवी प्राप्त करे। बालक ने अपने संरक्षक की आज्ञा का पालन करते हुये हेमू की गरदन पर तलवार से वार किया। साथ खड़े सरदारों ने भी लहू से लतपत लाश में अपनी-२ तलवार घोंप दी। इस तरह उन्होंने अपनी 'वीरता' दिखाई।'

यह भी सम्भव है कि लगभग सभी बड़े बड़े मुग़ल सरदारों अलीकुली खाँ, सिकन्दर उज़बेग, अब्दुला उज़बेग, पीर मुहम्मद, क़ियाखाँ आदि ने भी अकबर से कड़ा आग्रह किया होगा कि वह हेमू को अपने हाथों से क़त्ल करे। अकबर इतना गम्भीर नहीं था कि वह तर्क देकर इस कुकृत्य से दूर रहे। वह एक खिलाड़ी, छछोरा छोकरा और शिकार का शौकिन अनपढ़ बादशाह था इसलिये कन्धारी और स्मिथ की यह बात कि हेमचन्द्र की हत्या अकबर ने की, सत्य प्रतीत होती है। हेमचन्द्र का सिर काबुल और धड़ दिल्ली भेजा गया और दरवाजों पर लटका दिया गया।

हेमचन्द्र का वध शोधापुर के मुग़ल शिविर में किया गया। यह गाँव पानीपत के पश्चिम में लगभग तीन-चार मील पानीपत-असन्ध राज-पथ पर स्थित है। वहाँ मन्दिर की तरह एक इमारत के खण्डहर मौजूद हैं। गाँव के लोग कहते हैं कि यह हेमचन्द्र की समाधि है। लेखक ने इन खण्डहरों के कैमरा-चित्र लेकर प्रस्तुत

पुस्तक में प्रदर्शित किया है। देखिये पृष्ठ ८६ पर ऊपर : समाधि नीचे : समाधि की चादरछत। पृष्ठ ८८ पर दायें : समाधि का कोणपक्ष, बायें : समाधि का प्रवेश द्वार।

सन्त पूरनमल की शहीदी

पानीपत के विजयी मुग़ल ६ नवम्बर को दिल्ली पहुँचे और अकबर सिंहासन पर विराजमान हुआ। दिल्ली के राज-सिंहासन पर शेरशाह के पुत्र स्लीमशाह के बाद पिछले तीन वर्षों में यह सातवाँ सम्राट था—फ़िरोज़ शाह, आदिलशाह, इब्राहीमशाह, सिकन्दरशाह, हुमाँयू, हेमचन्द्र और अकबर।

दिल्ली और आगरा तक का क्षेत्र अधिकृत करने के बाद अकबर ने अन्य प्रदेशों को जीतने के लिये सेनायें भेजीं। उसने मुल्ला पौरमुहम्मद शेरवानी को मेवात पर अधिकार और हेमचन्द्र के परिवार के दमन के लिये रवाना किया।

मेवात में हेमचन्द्र के सहयोगी हाज़ीखाँ ने पूर्ववत अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। उसने हेमचन्द्र के पिता, पत्नी और परिवार के अन्य सदस्यों को देवती-माजरी के सुरक्षित दुर्ग में ठहराया हुआ था। पानीपत में अपने पति की हार और हत्या की खबरें सुनकर विधवा रानी सती नहीं हुई और बहुत बड़ा शाही खज़ाना लेकर मेवात भाग आई थी। कहते हैं कि जिन हाथियों पर खज़ाना लदा हुआ था, उनके महावतों को यह आज्ञा दी हुई थी कि वे अलग २ रास्तों से राजस्थान की ओर चलें और यदि पीछा करते हुये मुग़लों द्वारा खज़ाना छिन जाने का कहीं भी ख़तरा दिखाई दे तो इसे रास्तों में बखेर दिया जाये ताकि यह

धन शत्रु के हाथ लगने की बजाय निर्धन लोगों को मिले।

पीरमुहम्मद ने मेवात में कूच किया। हाज़ीखाँ शाही सेना पहुंचने से पहले ही अलवर छोड़कर भाग गया और रण्थम्भोर के दुर्ग में संग्रामखाँ के पास शरण ली। अलवर-विजय के बाद पीर मुहम्मद ने देवती-माजरी के दृढ़ दुर्ग का घेरा डाल दिया। दुर्गरक्षकों ने मुग़लों से घोर युद्ध किया। परन्तु शीघ्र ही दुर्ग का पतन हो गया और हेमचन्द्र के पिता सन्त पूरनमल बन्दी बना लिये गये।

हेमचन्द्र के पिता सन्त पूरनमल

बन्दी सन्त पूरनमल पीरमुहम्मद के सामने लाये गये। पीरमुहम्मद ने वृद्ध सन्त से कहा-'मुसलमान बन जाओ, वरना

तुम्हें ख़त्म कर दिया जायेगा।' यह वही पीरमुहम्मद था जो तुग़लक़ाबाद के युद्ध में हेमचन्द्र के सैनिकों के सामने दुम दबाकर भागा था और अब वह एक वृद्ध सन्त-पुरुष पर तलवार का ज़ोर आज़माना चाहता है। सन्त पूरनमल ने पीरमुहम्मद को कहा–'अस्सी वर्ष तक मैंने अपने धर्म के अनुसार प्रभु की पूजा की है। अब जीवन के सन्ध्या काल में मैं अपना धर्म क्यूं बदलू और वह भी मौत के डर से और बिना यह समझे कि मेरे धर्म न बदलने से तुम्हारी पूजा किस प्रकार भंग होती है। इस युक्ति-युक्त उत्तर से कठमुल्ला कतई प्रभावित न हुआ और सन्त का सिर तुरन्त धड़ से अलग कर दिया।

हेमचन्द्र की विधवा रानी देवती-माजरी के दुर्ग से सुरक्षित निकलने में सफ़ल हो गई और उन हाथियों के पास पहुंच गई जो दिल्ली के ख़ज़ाने से लदे जा रहे थे। मुल्ला पीरमहम्मद, हुसैनखाँ सईद खाँ आदि सरदारों के संचालन में मुग़ल सेना ने तीव्र गति से रानी का पीछा किया। रानी कुवा तथा बाँसवाड़ा के जंगलों-पहाड़ों में प्रवेश कर गई। रास्तों में वह अशरफ़ियाँ, सोने की डलियाँ, हीरे-मोती आदि बखेरती चली। कहते है कि लोग माला-माल हो गये। वर्षों तक उन रास्तों से गुज़रने वाले मुसाफ़िर नीचे देखते हुये चला करते थे, ताकि उन्हें अशरफी मिल जाये। मुग़ल सैनिकों ने जंगलों-पहाड़ों में रानी को बहुत तलाश किया, किन्तु उसका कही पता न चला।

जनश्रुति के अनुसार हेमचन्द्र की हत्या के बाद विधवा रानी सती इस कारण से नहीं हुई, क्योंकि वह अपने पति के हत्यारे बैरमखाँ से प्रतिकार लेने के लिते दृढ़ संकल्प थी।

१५६० ई० में बैरमखाँ बादशाह की नौकरी से मुक्त होकर मक्का जा रहा था। जहाज लेने के निमित्त वह गुजरात पहुंचा। वह पाटन के पास सहस्त्रलिंग में था और एक दिन वह विशाल सरोवर में नौका-विहार कर रहा था, जैसे ही वह वापस किनारे पर आया, एक अफ़गान मुबारक खाँ ने उसे छुरा घोंप कर मार दिया। कहते हैं कि बैरमखाँ की हत्या में रानी का हाथ था।

मेवात पर मुग़ल अधिकार स्थापित करके मुल्ला पीरमुहम्मद शेरवानी, लूट से प्राप्त अपार धन-सम्पत्ति लेकर दिल्ली लौट आया।

हेमचन्द्र की हत्या और सन्त पूरनमल के बलिदान के बाद दूसर बैश्यों पर मुग़लों के अत्याचार शुरु हुये। हेमचन्द्र के रिश्तेदारों को बन्दीगृह में डाल दिया गया। अत्याचार के भय से दूसर लोग इधर-उधर भाग गये। तथापि बादशाह अकबर का क्रोध शान्त नहीं हुआ और उसने शाही दरबार में अपने सामंतों से पूछा–'हेमू की जाति का कोई व्यक्ति बन्दी बनाये बिना रह तो नहीं गया है ? तब उसे बताया गया–'वृन्दावन में एक दूसर अभी भी मौजूद है।'

वृन्दावन में सन्त नवलदास दूसर रहा करते थे। वह सन्त पूरनमल के रिश्तेदार थे और राधावल्लभी साम्प्रदाय के एक सिद्ध पुरुष थे। मुग़ल सैनिकों ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया उन्हें सम्राट के सामने लाया गया। सम्राट ने उनसे उनकी जाति पूछी जिसका उत्तर देते हुये सन्त नवलदास ने कहा कि हरि-भक्तों की कोई जाति नहीं होती। इस उत्तर से क्रुध होकर सम्राट ने उन्हें बन्दी गृह में डाल दिया। ग्रंथ 'अनन्य रासिकमाल' के कवि भगवत्मुदित

के अनुसार—'सन्त नवलदास किसी दैवी-शक्ति से विलुप्त हो गये और जब सम्राट के अनुचर उन्हें खोजते हुए वृन्दावन पहुँचे तो उन्होंने देखा कि सन्त जी भजन-कीर्तन कर रहे हैं।'

सन्त नवलदास ढूसर

इस घटना से अकबर को भारी आश्चर्य हुआ। उसके हृदय में सन्त नवलदास के प्रति श्रद्धा जाग उठी और सन्तजी का सम्मान करने के लिये उन्हें वृन्दावन से पुनः बुलवा भेजा।

सन्त नवलदास राजदरबार में लाये गये। सम्राट ने उनका भारी आदर-सत्कार किया और ढूसर जाति के सभी लोग बन्दीगृहों से मुक्त कर दिये।

इस प्रकार मध्ययुग के सर्वाधिक तूफ़ानी पुरुष हेमचन्द्र,

उसके पिता सन्त पूरनदास तथा अन्य रिश्तेदारों एवं भाई-बन्धुओं के रोमांचकारी इतिहास की इतिश्री हुई।

सिकन्दर खाँ सूर कुछ समय तक मानकोट की गढ़ पंक्तियों से मुग़ल के साथ संघर्ष करता रहा परन्तु पानीपत की ख़बरों से वह हताश हो गया और अकबर से क्षमा-याचना करते हुये यह कहलवा भेजा—'मेरे पास मूल्यवान वस्तुएं हैं जिन्हें मैं शान्ति की भेंट-स्वरूप भेज रहा हूँ। मुझे बंगाल में शेष जीवन बिताने की आज्ञा दी जाये।' अकबर ने उसकी प्रार्थनायें स्वीकार करके उसे निर्वाह के लिये बंगाल में एक जागीर दे दी। अपने आत्म-समर्पण के तीन वर्ष बाद सिकन्दरखाँ की मृत्यु हो गई।

आदिलशाह चुनार के दुर्ग में था। बंगाल का सुल्तान बहादुर शाह उससे अपने पिता मुहम्मद शाह की मृत्यु का बदला लेने पर तुला हुआ था। मुहम्मद शाह छप्परघाट की लड़ाई में हेमचन्द्र के सैनिकों से मारा गया था—देखिए पृष्ट ४८ पर। १५६० ई० में सुल्तान बहादुर शाह ने आदिलशाह पर आक्रमण कर दिया। सूरजगढ़ में युद्ध हुआ जिसमें आदिलशाह हार गया और रणक्षेत्र में मारा गया। कहते हैं कि उसमें कुछ सांस शेष थे। तब उस पर हाथी फेर दिया गया। आदिलशाह की मृत्यु के बाद सूरवंश के प्रति कुछ निष्ठावान अफ़गानों ने उसके पुत्र को 'शेरशाह' की उपाधि से चुनार के दुर्ग में सिंहासन पर बिठा दिया। शेरशाह ने शीघ्र ही एक विशाल सेना इकट्ठी कर ली और मुग़लों से जौनपुर छीनने के लिये साइ नदी पार की। मुग़ल सेनापति ख़ानेज़माँ ने अफ़गानों की विशाल सेना केवल चार हज़ार सैनिकों से हरा दी। इस विपत्ति के बाद शेरशाह फ़कीर हो गया।

॥ समाप्त ॥